नया साहित्य

देशकी नयी साहित्यिक चेतनाका प्रतिनिधि

६

सम्पादक मंडल

यशपाल, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान

प्रकाशचन्द्र गुप्त, पहाडी

सम्पादक

नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर, रमेश सिनहा

शमशेर बहादुर सिंह

जन-प्रकाशन गृह

राजभवन, सैण्ढ्हर्स्ट रोड, बम्बई ४

मूल्य एक रुपया

सूची

मुद्रक—शरफ अतहर अली, न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, १९० बी, खेतवाडी मेन रोड, बम्बई ४
प्रकाशक—शरफ अतहर अली जन-प्रकाशन गृह, राजभवन, सैण्डहर्स्ट रोड, बम्बई ४

निराला को
उनकी इक्यावनवीं वर्ष गाँठ के अवसर पर

कवि निराला

राहुल सांकृत्यायन

सूर्यकान्त त्रिपाठीसे हमे कुछ भी पता नहीं लगता। मगर 'निराला' कैसा सार्थक शब्द है। हिन्दीके कवियोमे ही नहीं, साधारण लेखकोमे भी उपनाम या तखल्लुस रखनेका रिवाज प्राय: मर्यादाको अतिक्रमण कर गया है, मगर 'निराला'—यह उपनाम बिल्कुल उस व्यक्तित्वको प्रगट करता है। हिन्दी कविताका यह महातारक वस्तुत: निराला है। नवयुग प्रवाहके लानेवाले तीन भगीरथो—पंत, प्रसाद, निरालाको पाना हिन्दीके लिये सौभाग्य है। तीनोंका गम्भीर साहित्यिक ज्ञान, तीनोकी भाव-शब्द-मूल्यके आँकनेकी सूक्ष्म दृष्टिने हमारे काव्यको आरम्भसे ही पुष्ट, गम्भीर और सर्वतोमुखीन रुप दिया है। मगर इन तीनोमे भी निराला बिल्कुल निराले हैं। उन्होंने संस्कृत और उसके साहित्य और दर्शनका रसास्वाद लिया है। बंगभाषाके उन्नत साहित्यका इतना गम्भीर अध्ययन करनेवाले बंग-भाषा-भाषियोमें भी विरले ही होगे। किन्तु निरालाको पहचाननेवाले इतने कम क्यों हैं? इसपर हमें अफसोस नहीं है। निरालाके गुण-ग्राहकोका क्षेत्र देश-काल दोनोंमें विशाल है। अफसोस इस बातका है कि हम उस प्रतिभाकी क्षमतासे पूरा लाभ नहीं उठा रहे हैं, उसकी सृजन-शक्ति बेकार रहती है।

यह क्यों? इसमे तो मैं अपने समाजकी बनावटको दोषी ठहराता हूँ, जो प्रतिभाओंके विकासमे सहायक नहीं होती बल्कि उन्हे निष्क्रिय करती है। निराला लीक पर नहीं चल सकते, वह लीक पर चलनेके लिये बनाये नहीं गये। लेकिन वह लीकोंको ध्वंस ही करनेकी क्षमता नहीं रखते, वह नयेके विधान करनेकी प्रभुता भी रखते है। वह फ़र्माइश पर कुछ नहीं लिख सकते. यहाँ मेरा मतलब है व्यक्तिकी फर्माइशसे; युगकी फर्माइशका वह अनादर नहीं कर सकते, इसका प्रमाण उनकी कविता, उनका नव प्रवाह है। आप पूछेंगे वह इतना कम सृजन क्यो करते हैं? यह तो हमारे समाजका अपराध है जो प्रतिभाओके सृजन करनेमे सहयोग नहीं देता। कितनोंने साहित्यके विस्तृत क्षेत्रमें उनकी गम्भीर आलोचनाको सुना होगा लेकिन उसे दो-चार नहीं हजारो हृदयोतक पहुँचाना चाहिये। निराला खुद उसके लिये प्रयत्न नहीं कर सकते। जिस

वक्त उनका मस्तिष्क-हृदय जिह्वाको पूर्ण सहयोग देता है, उसी वक्त उनके हाथोमें कलम पकड़वानेकी शक्ति हममें नहीं है। शायद वैसा करते वक्त हृदय और मस्तिष्क सहयोग देनेसे भी इनकार कर दें। उनकी प्रवृति ही वैसी है किन्तु कलम पकड़ानेका काम बहुत मुश्किल नही है, यह साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। क्या हमारा समाज ऐसा प्रबन्ध कर सकता है ? नही, वर्तमान समाज नहीं। अभी वह वंदीजन युगमे है, जहॉ व्यक्ति सम्मान और पारितोषिक वितरण करते है।

उनका कवि हृदय सुसुप्त नही है। मगर वह निरन्तर काम नही कर सकता, उसकी क्रिया अविच्छिन्न प्रवाहके रूपमे नहीं, विच्छिन्न प्रवाहके रूपमे ही हो सकती है। दृश्य उपस्थित रहने चाहिये, और मनकी निश्चिन्तता या एकाग्रता चाहिये। इसे दूसरा समाज उपस्थित कर सकता है। निरालामें दोष हैं ? हॉ, दोप हैं, वही जो उनके निराला नामको सार्थक बनाते हें, जो सदा अतिलौकिक असाधारण प्रतिभाओमे देखे जाते हैं। मगर मानवता पर पहुॅचा समाज उन दोषोंके रहते भी उनकी कद्र करता। पावलोफ सोवियत-शासन और साम्यवादको बुरा-भला कह उठता था, मगर लेनिन उसकी नाजबरदारी करता था, क्योकि वह जानता था—यह दोप क्षण-स्थायी है, वह पावलोफकी महान सृजन-शक्तिका अग नही है। सोवियत-समाज प्रतिभाको व्यक्तिकी सम्पत्ति नहीं, सारे समाज—वर्तमान और भविष्यके भी समाज—की महानिधि समझता है। इसीलिये वहॉ प्रतिभाओको उपेक्षा, विस्मृति, और निष्क्रियताका शिकार नहीं होने दिया जाता। निरालाको भूख लगती है, प्यास लगती है, और उसके साथ किसी समय चिन्ता भी हो सकती है। मगर उसको दूर करनेके लिये स्वर्णराशि भी निरालाको पर्याप्त नहीं हो सकती। निरालाके हाथ उस स्वर्णराशिका लेखा रखनेके लिये नहीं है। मेरे एक दोस्तने पूछा, आपके बसमें होता तो आप कैसे इस प्रतिभाका उपयोग करते ? मैंने कहा—मै उनके लिये योग्य अनुचर देता, ऐसा अनुचर जिसके लिये निरालाके हृदयमे कोमल स्थान बन जाता। वह उनकी शरीर-यात्राका भार अपने ऊपर लेता, वह उन्हें उन दृश्यो तक पहुॅचाता, जहॉ उनकी हृदय-वीणा झकृत होने लगती है;—ऐसा दृश्य चाहे हिमालयमे हो, चाहे गंगासागरमें, या शहरके गन्दे मुहल्लेमें ही। वह निरालाकी प्रतिभा की लेखनी बनता।

अभी वह समाज दूर है। हम उसके लानेके लिये उतावले हैं, लेकिन भविष्य नहीं, वर्तमान ही आज हमारा सहायक हो सकता है। पर यह बेबसी हमारे लिये अकर्मण्यताका पाठ पढानेके लिये नहीं है, बल्कि और तेजीसे हथौड़ा चलानेके लिये है। आओ, स्वच्छ नभमें विचरनेवाले बादलो! तुम्हारा कार्यक्षेत्र पृथ्वीपर है। तुम्हारे और पृथ्वीके मिलनेसे ही नवीन सृष्टि हो सकती है।

सांस्कृतिक जागरण और निराला

रामविलास शर्मा

निरालाजीका जन्म ऐसे परिवारमे हुआ था जहाँ महावीरजीके प्रति असीम श्रद्धा थी, तो पतुरियाके लडकोंके यहाँ पानी पीनेपर जबर्दस्त मार भी पडती थी। उनके घरके लोग राम और कृष्णके उपासक, सामाजिक बन्धनोंको माननेवाले और किसी तरहके भी विद्रोहसे कोसों दूर रहनेवाले लोग थे। इस तरहके वातावरणकी वास्तविक देन 'साकेत' और 'यशोधरा' है न कि 'परिमल' और 'अनामिका'। लेकिन बैसवाड़ेकी आल्हा-नौटंकी-सस्कृतिके अलावा युवावस्थामे उनका सम्पर्क बगालकी दो महान सास्कृतिक धाराओंसे हुआ: एक तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें बंगालका नवीन सास्कृतिक जागरण और दूसरा स्वामी विवेकानन्दका स्थापित किया हुआ श्री रामकृष्ण मिशन। इन दोनोका उनपर स्थायी प्रभाव पडा है। और इसमे सन्देह नही कि अपने साहित्यिक जीवनके आरम्भकालमे उन्हे पहले इन्हींसे प्रेरणा मिली है।

रवीन्द्रनाथने बंगला कविताको पुरानी रूढियोंके दलदलसे निकालकर प्रगतिकी समतल भूमिपर ला खडा किया था। अँग्रेजीके गीति-साहित्यके समपर उन्होने बॅगलामे नये छंदोकी रचना की, उसे एक नयी गीतात्मकता दी। समूची पौराणिक सस्कृतिको उन्होने अपने काव्यका विषय बनाया, उपनिषदोसे लेकर मुसलमान सतोकी वाणी तकको उन्होने नया रूप दिया। वे एक महान सांस्कृतिक जागरणके अग्रदूत थे जिसकी किरणे बंगालकी सीमाओंको पार करके दूर-दूरके प्रान्तो तक फैल गयी थी। वंग-भगके आन्दोलनका रवीन्द्रनाथ पर गहरा असर पड़ा। नये राष्ट्रीय गौरवकी भावना उनकी कवितामे कूट-कूट कर भरी है। आगे चल कर उन्होने स्वदेशी आन्दोलनमें भी सक्रिय भाग लिया। चर्खेको लेकर गांधीजीसे उनका विवाद चला, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि वे राष्ट्रीयताके विरोधी थे। इस विवादमे छाया-वादी कवियोने भी हिस्सा लिया, और निरालाजीने इस विषय पर एक लम्बा लेख लिखा जिसमे उन्होने अपने आदर्श कविकी यथेष्ट भर्त्सना की। वह उस समय भी गाधी-वादके समर्थक नही थे; फिर भी नये राष्ट्रीय आन्दोलनका वह समर्थन करते थे और चाहते थे कि सभी साहित्यकार उसे आगे बढानेमे सहायक हों। राजनीतिके सिवा रवि बाबूने बहुतसे सामाजिक सुधार भी किये थे और ब्रह्म-समाजके जरिये उन्होने उस काम को पूरा किया था जिसे राजा राममोहन रायने शुरू किया था। निरालाजी पर उनकी बहुमुखी प्रतिभा और कार्य-प्रणालीका बहुत प्रभाव पड़ा।

स्वामी विवेकानन्दका प्रभाव रवि बाबूसे कम व्यापक नहीं है। निरालाजीने सदा यही समझा है कि मनुष्योंमे सन्यासी सबसे बडा है। इस बातको सभी जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्दका आन्दोलन सन्यासियोका वैराग्य मात्र न था। उसमे राजनैतिक दासता और सामाजिक रूढियोको खुली चुनौती भी थी। अपनेको दीन और निकृष्ट समझनेवाले पठित मध्यवर्गको विवेकानन्दने गर्व करनेके लिये वेदान्तका दर्शन दिया। विश्व-धर्म-सम्मेलनमें विवेकानन्दकी वाणी पद-दलित भारतकी अप्रतिहत और अपराजित वाणीके रूपमें सुनायी दी थी। रामकृष्ण मिशनने बाढ पीडितोकी सहायताके लिये सार्वजनिक रूपसे सेवा मार्गका प्रदर्शन किया। 'सेवा प्रारम्भ' नामकी कवितामें निराला जी ने उसके इस रूपकी चर्चा की है।

लेकिन इसके सिवा उसका एक आध्यात्मिक रूप भी है, जो संसारको नश्वर और मिथ्या मानता है, जो वैज्ञानिक आविष्कारोंका विरोधी है, जो सन्यासियोके चमत्कार कार्योंमें आस्था उत्पन्न करता है।

'भक्त और भगवान' कहानीमें निरालाजीने एक सन्यासीका जिक्र किया है, जिन्हे भक्त रामायण पढ कर सुनाता है। मॉगमे सिन्दूर लगाकर अन्जनीदेवीका रूप धारण करनेवाली उनकी स्वर्गीया पत्नी श्री मनोहरा देवी हैं। पर्वत और गदा लिये हुए महावीरकी मूर्त्तिमें भारतके मान-चित्रकी कल्पना करना निरालाजीकी अनोखी सूझ है। इस कहानीमें रामकृष्ण मिशन और निरालाजीके घरकी सस्कृतियॉ मिलकर एक हो गयी हैं। भक्त स्वामी प्रेमानंदका भी उपासक है और हनुमानजीका भी। स्वामीजी हनुमानजीके ही अवतार मालूम होते हैं।

रामकृष्ण मिशनने 'परिमल' के कविको अद्वैतवाद दिया। उसने उन्हें यह भी सिखाया कि मानव-मात्रकी सेवा वेदान्तके प्रतिकूल नहीं है। निरालाजीके अन्दर एक अन्तर्द्वन्दका जन्म हुआ, यदि संसार और मनुष्य मिथ्या है तो इनकी सेवामे व्यर्थ समय क्यों लगाया जाय? इस मानसिक सघर्षका चित्र उनकी 'अधिवास' कवितामें मिलता है। वह पूछते हैं कि अधिवास कहॉ है? मानो सन्यासी उत्तर देता है कि अधिवास वहीं है जहॉ गतिका अन्त हो जाता है। कवि फिर पूछता है कि जबतक उसके हृदयमे करुणा है, क्या तबतक गतिका अन्त हो सकता हैं? दुखी मानवको देखते ही उनके हृदयमें वेदना उमड आती है और वह उसे गलेसे लगा लेता है। वह मानता है कि वह मायामे फॅसा हुआ है और उसकी गति रुक नहीं सकती। फिर भी उसे दु:ख नहीं होता। वह गतिहीन अधिवासको नमस्कार करता है और पुकार कर कहता है:

> **छूटता है यद्यपि अधिवास,**
> **किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।**

'परिमल' मे इस तरहकी बहुतसी रचनाऍ हैं, जिनमे अद्वैतवादको चुनौती

दी गयी है। 'भिक्षुक', 'दीन' आदि रचनाओंमें उसी करुणाको उभारा गया है जो क्रमश विकसित होती हुई एक क्रान्तिकारी सहानुभूतिके रूपमें बदल गयी है। इसी कालकी रचना 'जीवन चिर कालिक क्रन्दन' है जो 'अनामिका' संग्रहमें आयी है। जीवनकी कटुता और प्रखर वेदना यहाँ पर गीत बन गयी है। हिन्दी कवितामें ऐसा उत्कट आत्मनिवेदन 'विनय पत्रिका' के बाद पहली बार सुनायी पड़ा था। अद्वैतवाद और सन्याससे प्रेम होते हुए भी निरालाजीकी रचनाओंमें उनके व्यक्तित्वकी चर्चा भी काफी रहती है। अपने जीवनके दुखको माया कहकर वह नहीं टाल देते, वरन् उससे बहुत ही प्रभावपूर्ण पंक्तियोंका वह निर्माण करते हैं। वे कहते हैं

मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुख की गहन अधतम
निशि न कभी हो भोर,
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता —
इतना वन्दन — अभिनन्दन ?
जीवन चिर कालिक क्रन्दन !

कहाँ रहस्यवादीकी उल्लासपूर्ण-कल्पना कि चराचरमें सच्चिदानन्दका प्रकाश व्याप्त है और कहाँ दुखकी इस काली रातकी कल्पना जिसका विहान कभी होगा ही नहीं। वह अद्वैतवादी नहीं है जो अपने अन्तरको वज्र कठोर कहकर समाजके आगे ताल ठोकता है। वह समाजके और सैकड़ों लोगों जैसा संघर्षमें जूझनेवाला सिपाही है जो अपना दिल बढानेके लिये दुश्मनको इस तरह ललकारता है।

'परिमल' का कवि प्रेम और सौंदर्यका कवि है। उसे स्वर्गीय प्रियाकी याद आती है, लेकिन वह वेदनाका कवि होकर नहीं रह जाता। वह देखता है कि कली अपने लावण्यसे समूचे वनको लुभा लेती है और भ्रमरका गीत उसकी गन्धमें मिलकर एक हो जाता है। एक दूसरी कवितामें वे कहते हैं

देख पुष्प-द्वार
परिमल मधु लुब्ध मधुप करता गुञ्जार

उनके 'परिमल' समूहकी सार्थकता इस पंक्तिके 'परिमल' शब्दसे है। वह स्वय वासना और सौंदर्यके द्वार पर गुञ्जार करते हुए कवि हैं। कितनी ही रचनाओंमें सोती हुई प्रियाको जगाने या उसके कक्षका द्वार खुलवानेका भाव आया है। 'प्रिय मुद्रित दृग खोलो'—वह गाते हैं, क्योंकि वासना प्रेयसी जीवनके उपवनमें विहार करनेके लिये बार-बार उनका आह्वान कर रही है। यह वही मानव सुलभ वाणी है जो युगों-युगोंसे स्त्री और पुरुष दोनोंके ही कंठोंमें सुनायी देती रही है। इसे कभी हम वासना कहते हैं, कभी प्रेम, लेकिन न यह माया है, न मिथ्या। निरालाजीकी कला इस बातमें है कि इस मानव सुलभ व्यापारकी परिणिति उन्होंने उस आनन्दमें

की है जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जा सकता है। उनकी सौंदर्य सम्बन्धी कविताओंके अन्तमें सदा यह सकेत रहता है कि इस तृप्तिसे बढकर और कुछ नहीं। इसका एक सुन्दर निदर्शन 'गीतिका' में है। 'स्पर्शसे लाज लगी'— इस गीतका अन्त इस प्रकार होता है :

> मधुर स्नेहके मेह प्रखरतर
> बरस गये रस निर्झर झर झर,
> उगा अमर अंकुर उर भीतर
> संसृति भीति भगी।

मुक्त छंदमे होते हुए भी 'जुहीकी कली' ने सबसे ज्यादा ख्याति पायी है। इस रचनामे नवयुवक कविका एक मनोरम सौन्दर्य-स्वप्न अकित है। इस तरहका भुलावा जीवनमें अनेक बार नहीं होता। बुद्धि रोमासके चरणोंमे बारबार यों आत्म-समर्पण नही करती। 'जुहीकी कली' को कविने अमरत्व प्रदान किया है। जिसकी आयु दिनोंमे गिनी जा सकती है, उसे वर्ष भर तक पत्राङ्कमे रखने पर भी तरुणी रूपमें कल्पित किया गया है। इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं। अस्थायी प्रेम और सौंदर्य से ऊबे हुए रोमांटिक कवि इस तरहके अमर प्रतीकोंकी कल्पना करते है। अंग्रेज कवि कीट्सकी 'नाइटिंगेल' वर्षोंसे, शताब्दियोंसे, अपना वेदना-मधुर गीत गाती रही है। मध्य-कालके राजा और विदूषक ही नहीं, ईसामसीहके पहले मोआबकी रमणी 'रूथ' और कल्पना लोककी अप्सरायें उसके गीतको सुनकर सान्त्वना प्राप्त कर चुकी हैं। इसी कीट्सकी दूसरी कवितामे प्राचीन यूनानकी कलाकृति, सुन्दर चित्रोंवाला वह पात्र—ग्रीशन अर्न—सदियोंसे मानव-मात्रको धीरज बँधाता रहा है और भविष्यमे भी बँधाता रहेगा। वैसी ही सुंदर कल्पना कवि निरालाने 'जुहीकी कली' मे की है। दुर्भाग्यसे इस तरह की कल्पना टिकाऊ नही होती और क्रूर यथार्थ एक झटकेसे इस मधुर स्वप्नको भंग कर देता है। कीट्सने 'नाइटिंगेल' वाली कवितामे लिखा था—कल्पनाकी परी उसे यो धोखा नही दे सकती।

'परिमल' में 'जुहीकी कली' के बाद दूसरी कविता है 'जागृतिमे सुप्ति थी'। इसमें भी एक सौदर्य चित्र अकित है, लेकिन यह कई वर्षोंके बादकी एक नयी दुनियाका चित्र है। यहाँ पर निर्दोष 'जुहीकी कली' के बदले वह नागरी प्रिया है जिसके मौन अधरो पर सुरा पानके चिन्ह विद्यमान हैं। वासन्ती निशाके बदले यहाँ प्रभातकी लालिमा है जिसमे उसकी लाजमयी चेतना विलीन हो जाती है। कवि अपने पिछले स्वप्न भूल रहा है और जीवन-यापन करनेके लिये नये स्वप्नोंकी सृष्टि कर रहा है।

'परिमल' की विशेषता यह है कि उसमें प्रकृतिके ऐसे अनोखे चित्र आये हैं जो हिन्दी कवितामें बिल्कुल नये हैं। छः सात कविताएँ तो वर्षा और बादलोपर इसी

संग्रहमें है, और 'गीतिका' और 'अनामिका' और इधरके नये संग्रह 'नये पत्ते' और 'बेला' को लें तो बादलोंपर उनकी रचनाओंका एक अच्छा खासा संग्रह बन जायगा। वर्षाका यथार्थ वर्णन ही उन्होंने नहीं किया, अनेकों प्रतीकोंके रूपमें उन्होंने बादलका उपयोग किया है। 'अलि घिर आये घन पावसके' यह गीत व्रजभाषाके श्रृंगारी गीतोंकी याद दिलाता है। बादलकी बूँदें स्मर-शरके समान हैं और धरतीके हृदयको बेध देती हैं—इस कल्पनाको उन्होंने अन्य रचनाओंमें भी दुहराया है। 'झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन-घोर' में दूसरा ही राग है।

'बादल-राग' की छठी कविता कविकी एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है, और अपनी क्रान्तिकारी व्यञ्जना और उदात्त स्वर-सौंदर्यमें वह बेजोड़ है। समीरके सागरपर बादल ऐसे तैरते हैं जैसे अस्थिर सुखपर दुखकी छाया, ग्रीष्मसे दग्ध संसारके हृदय पर विप्लवका प्रतीक यही बादल है। वह एक नावकी तरह है जिसमें युद्धकी आकांक्षायें भरी हैं और उसके भेरी-गर्जनसे पृथ्वीके हृदयमें सोये हुए अंकुर फूट निकले हैं।

जिनका कोष खाली हो गया है, उनकी मानसिक शांति भंग हो गयी है। विप्लवका यह भैरवनाद सुनकर अंगना-अंगसे लिपटे हुए भी वे अपने सिंहासनपर काँप उठते हैं, लेकिन किसान अपनी निर्बल बाँह उठाकर उसका आह्वान करता है। सन् '२३ में ही निरालाने वर्ग-संघर्षकी ओर संकेत करते हुए यह अद्वितीय चित्र अंकित किया था

रुद्धकोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अङ्गसे लिपटे भी
आतङ्क अङ्क पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जना से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है जीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार!

श्रीमती महादेवी वर्मा आधुनिक कवि सीरीजवाले संग्रहकी भूमिकामें छायावादी युगकी सामाजिक और राष्ट्रीय कविताओंके बारेमें लिखती हैं — "राष्ट्रीय भावनाको लेकर लिखे गये जय-पराजयके गान स्थूल धरातलपर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियोंमें जो मार्मिकता ला सके हैं, वह किसी और युगके राष्ट्रीय गीत दे सकेंगे या नहीं इसमें सन्देह है। सामाजिक आधारपर 'इष्ट देवके मंदिरकी पूजा-सी' में तप पूत वैधव्यका जो चित्र है वह अपनी दिव्य लौकिकतामें अकेला है।" उनका इशारा निरालाजीकी प्रसिद्ध

कविता 'विधवा' की ओर है। छायावादी उपमाओके बावजूद निरालाजीकी सामाजिक सहानुभूति स्पष्ट है। "व्यथाकी भूली हुई कथा" मे एक यथार्थवादी कविका सच्चा स्वर बोल उठता है। इस तरहकी सामाजिक कविताऍ 'परिमल' मे काफी हैं। 'बहू' कवितामे उन्होने सुन्दर उपमाऍ बॉधी हैं। उसे सौदर्य सरोवरकी तरग और किसी विटपके आश्रयमें खिली हुई किसलय-कोमल लता कहा है। कलेजेके दो टूक करनेवाला 'भिक्षुक' हिन्दी में अपना सानी नहीं रखता। उसका लकुटिया टेककर चलना, फटी पुरानी झोलीका मुॅह फैलाना, साथके बच्चोका पेट मलना और हाथ फैलाना, और कुछ न मिलने पर ऑसुओके घूॅट पीकर रह जाना, ऐसे चित्र हैं जिनसे सभी परिचित हैं।

'कण' नामकी कवितामें भी प्रतीक व्यञ्जना दलितोके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती हैं। आकाश देखते हुए कणको न जाने कितने दिन बीत गये हैं

पड़े हुए सहते हो अत्याचार,
पद पद पर सदियों से पद-प्रहार।

इस सहनशीलता के साथ उसके अनन्त प्रेमकी झलक दिखा कर उन्होंने कवितामें रहस्यवादका पुट दे दिया है। रज होनेपर भी विरज निराकारके लिये वह सब कुछ सहनेको तैयार है। विप्लवी बादलका विद्रोह यहॉ नहीं। जहॉ भी रहस्यवादकी पुट होगी वहॉ यह विद्रोह दबा होगा। कवि विप्लवका राग भूल कर सहनशीलता और अनन्तमें लय होनेका उपदेश देने लगता है। जिन कविताओंको रहस्यवादी कहा जाता है, उनपर एक सरसरी निगाह डालनेसे भी यह स्पष्ट हो जायगा कि वह छाया-वादी युगका सबसे कमजोर पहलू है।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'भर देते हो' में इष्टदेव करुणाकी किरणोसे कविके क्षुब्ध हृदयको पुलकित कर देते हैं। वह अन्तरमें आकर व्यथा-भार कम कर जाते हैं। अपने वज्र-कठोर अन्तरकी बात भूलकर कवि अधकारके रोदनकी बाते करने लगता है। फूलोसे ढुलकते हुए ओस बिन्दुओंके समान उसके कपोलोपर ऑसूकी बूॅदें ढुलकती हैं। इष्टदेव किरणोसे ऑसू पोछ लेते हैं और उसके दुखी जीवनमे नये प्रभातका प्रकाश भर देते हैं। 'जीवन चिर कालिक क्रन्दन' की तुलनामे यह व्यापार कितना अवास्तविक और काल्पनिक मालूम होता है।

'हमे जाना है जगके पार' इस गीतमें छायावादकी पलायन-प्रवृत्ति दिखाई देती है। कौन ऐसा रोमाटिक कवि है जिसने कल्पनाके पर लगाकर एक दूर के सुनहरे ससारमें उड़ जानेकी न सोची हो? वहॉ नैनोसे नैन मिले रहते हैं; अधकारका नाम नहीं। उस सुनहरे ससारमे क्षुब्ध अधरोको दूसरे अधरोका हास मिलता है और रूठे हुए हृदय, हृदयका हार बन जाते हैं। इस दुनियामें प्रेम मिलता भी है तो उसमें मान होता है और ज्ञानकी ओर बढनेमे मोहका सामना करना पड़ता

है। हमें तो ऐसा ज्ञान चाहिए जहाँ मोहका सामना न करना पड़े। अगर मोहको ही ज्ञानका रूप दे दिया जाय तो यह सब झमेला ही मिट जाता है।

'परिमल' की रहस्यवादी कविताओको एक साथ पढने पर पता लगता है कि रवीन्द्रनाथसे अधिक कवि पर विवेकानन्दका प्रभाव है। इष्ट-देवकी मातृ-रूपमे कल्पना को स्वामी विवेकानन्दने ही लोकप्रिय बनाया था। "देवि तुम्हे मै क्या दूँ", "एक बार बस और नाच तू श्यामा" आदि रचनाओमे यह प्रभाव स्पष्ट है। इन कविताओंकी विशेषता यह है कि भावुकताके ऑसुओके बदले जीवनकी दारुण व्यथाको गहरे रंगोमें अकित किया गया है। और माता रूपमे इष्ट देवी, आनन्दसे अधिक, शक्तिकी देवी है। वह कविको पलायनवादी ससारमे नहीं ले जाती, न सुनहली किरणोंसे उसके ओस जैसे ऑसू पोछ लेती हैं। वह उसे दु ख भार सहन करनेके लिये प्रेरणा देती हैं और मानो कहती है कि यह भार वहन करना ही उनकी श्रेष्ठ उपासना है। यह कल्पना 'गीतिका' मे विकसित हुई है।

रहस्यवाद छायावादका एक पहलू था, दोनोको एक मान लेनेपर बहुत तरहके भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्य रोमाटिक आन्दोलनोकी तरह छायावादमें भी विरोधी प्रवृत्तियों और असंगतियोका अभाव नहीं है। पलायन और अध्यात्मवादके साथ उसमें सघर्षका स्वागत और क्रातिकी चाह भी है। पलायनका रूप अध्यात्मवादी संसारकी कल्पना ही नहीं है, इतिहाससे वे युग ढूंढकर निकाले जाते हैं, जिनसे कविको आतरिक सहानुभूति होती है। 'दिल्ली' और 'खॅडहर' कविताओंमे पुरातन वैभवके प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की गयी है। 'शिवाजीका पत्र' और गुरू गोविन्द सिह पर 'जागो फिर एक बार' नामकी कवितामे उस हिन्दू पुनर्जागरणके चिन्ह मिलते हैं जो शुरूमे हमारे राष्ट्रीय जागरणका ही एक अग रहा था। 'यमुना' में उन्होंने पौराणिक ससारको नवीन जीवन दिया है। व्रज और यमुनाको देखकर अनेक आधुनिक कवियोंने नटनागर श्याम और पनघट पर गोपियोकी मधु-प्रेम-लीलाके जो चित्र अकित किये है उनका आरम्भ इसी कवितासे होता है। 'पंचवटी प्रसङ्ग' मे उन्होने रामकी गाथाको पुनर्जीवित किया है। इसमें गोस्वामी तुलसीदासका भक्ति-भाव उभरकर आया है। लक्ष्मण कहते हैं

> मुक्ति नहीं जानता मैं,
> भक्ति रहे काफ़ी है।

उनका आदर्श है कि माताकी तृप्तिके लिये वे अपना सर्वस्व निछावर कर दें, वे अपनी समस्त तुच्छ वासनाओका विसर्जन करके एक मात्र भक्तिकी कामना कर सकें।

इस प्रकार 'परिमल' की रचनाओंमे छायावादकी बहुमुखी प्रवृत्तियॉ अपनी रूपरेखामें स्पष्ट होकर पाठकके सामने आती हैं। द्विवेदी युगकी वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकताके बदले पहले पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और श्रृंगारके स्वर

सुनाई पड़ते हैं। नैतिकताके विरोधने उच्छृंखलताका रूप नहीं लिया। नये कवियोने व्यक्तित्वके पूर्ण विकासके लिये उस सामाजिक स्वाधीनताकी मॉगकी जिसे पिछले युगके सामाजिक बंधन दबाकर रखना चाहते थे। इन कवियोंने नये ढँगसे प्रकृतिका चित्रण करना शुरू किया, इस तरह की कविताको उन्होने लक्षण-ग्रन्थोकी सीमाओसे उबार लिया। उद्दीपन या उपदेशके लिये प्रकृतिका वर्णन काफी नहीं था। प्रतीक रूपमें भी प्रकृतिका उपयोग किया गया। लेकिन पहले पहल हिन्दी कवितामें उसके यथार्थ चित्र देखनेको मिले। सामाजिक रचनाओमे कवियोंने दलित वर्गके प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की तो साथ-साथ समाजका ढॉचा बदलनेके लिये विप्लव और क्रान्तिकी मॉग भी की। रहस्यवादी कविताओमें उन्होने आनन्द और प्रकाशमें इष्टदेवकी कल्पनाकी लेकिन अपने जीवनकी दारुण व्यथाको भी वे भुला नहीं सके। छंद और भाषामे नये प्रयोग करके उन्होने रीतिकालीन आचार्योंको बता दिया कि हिन्दी कवितामे एक नये युगका आरम्भ हो गया है।

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी के प्रति

सुमित्रानंदन पंत

छंद बंध ध्रुव तोड, फोड़ कर पर्वत कारा
अचल रूढियों की, कवि! तेरी कविता धारा
मुक्त अबाध अमंद रजत निर्झर सी निःसृत,—
गलित ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित!
स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मंदिर
शिल्पि, बनाया,—ज्योति कलश निज यश का धर चिर।
शिलीभूत सौन्दर्य ज्ञान आनंद अनश्वर
शब्द शब्द मे तेरे उज्वल जडित हिम शिखर।
शुभ्र कल्पना की उड़ान, भव भास्वर कलरव,
हंस, अंश वाणी के, तेरी प्रतिभा नित नव;
जीवन के कर्दम से अमलिन मानस सरसिज
शोभित तेरा, वरद शारदा का आसन निज।
अमृत पुत्र कवि, यश काय तव जरा-मरणजित,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तन्त्री झंकृत।

निराला जी

वृन्दावनलाल वर्मा

किसी भी वर्तमान कविके विषयमें कुछ लिखना मेरे लिए एक समस्या है और फिर निरालाजी सरीखे कविके लिए लिखना कुछ साहस चाहता है।

निरालाजीकी पूर्व-कालीन कविता सब लोगोंके लिए नहीं थी। जिनका हिन्दी-भाषा-ज्ञान काफीसे कुछ अधिक रहा हो वे ही उनकी कविताको समझनेकी क्षमता रखते थे। उनकी कोमल कल्पनाएं और गुम्फित सूक्ष्म विचार, नई-नई उपमाएँ और प्रकृतिकी भिन्न भिन्न झलकोंके भिन्न-भिन्न और चित्र विचित्र उद्घाटन, ऐसी पदावलिमें प्रस्तुत किये गये जो अभ्यस्त कवियोंको भी कुछ सीखनेके लिए विवश करते थे।

आरम्भमें उनकी कविताको मूर्त छायावाद समझा जाता था। जो लोग मर्मको रससे अलग समझनेका आग्रह करते हैं और जो काव्यको शर्बतका सीधा ग्लास समझते हे, उनको छायावादकी मधुर निस्सीमता और व्यापक मोहकतामे त्रिशंकुसा रह जाना पडा।

जो लोग कवियोंको न केवल पिंगलकी जकड़ोंमे बॉधना चाहते हैं बल्कि परिपाटियोंकी लीकोंपर रेंगता हुआ देखना चाहते हैं, उनको निरालाजीका स्वतन्त्र और अबाध समीर पेडोंको उखाडके फेंकनेवाला प्रभंजन प्रतीत हुआ। परन्तु वह युग शीघ्र आया जब रुढियोंकी तोड-फोड और साहित्यकी मस्त चाल पर्याय हो उठी।

निरालाजी इस प्रगतिके कवि सदासे ही हैं—मुझको ऐसा आरम्भसे ही जान पडा। उन्होंने अपनी कल्पनाको जो वाहन दिया था, वह बाढ पर आयी हुई नदीका प्रवाह था जिसपर ऑखका ठहरना और ध्यानका रमना दूभर सा था।

उनकी प्रतिभा चकाचौंध कर देने वाली है। वह अपनी बातको जिस प्रकार कहते हैं, उसको बहुत कम लोग कह सकते है। वह बारीकसे बारीक कल्पना और विचारको भारीसे भारी बादलपर बैठा सकते हैं और हंसके हलकेसे हलके पंखे पर भी।

अब वह हिन्दी-भाषियोंको अपनी प्रतिभाका जो प्रसाद दे रहे हैं, वह उनको साधारण जनताके बहुत निकट ला रहा है।

हम लोगोंकी कामना है कि वह हिन्दी और हिन्दुस्तानकी बहुत समयतक सेवा करते रहें।

निरालाजीके चार पत्र

[१]

सुधा कार्यालय,
अमीनाबाद,
लखनऊ
२२-६-१९३०

चिरंजीव रामधनी,[१]

अब तुम लोग चादपुरसे आगये होगे। आशा है, अम्मा भी अभी होगी और तुम सब लोग सानन्द सकुशल होगे। शायद अब तुम मकान आदिके छवानेके काममे लगे हो। अम्मा भी, मुमकिन है, अभी १०। ५ दिन कहीं न जॉय। हम प्रसन्न हैं, काम ज्यादा रहनेसे हमें अभी फुरसत नहीं मिली। मकान छवाना छोपाना था। पर अकेले क्या करें ? कहीं जल गिरा तो घर बैठ जायगा। अभी ५। १० दिन कमसे कम हमको सॉस लेनेका वक्त नहीं। इससे अधिक समय भी लग सकता है। फिर सरोजको गॉवमें छोड़ देंगे। द्विवेदीजीको भी वही रख देंगे। हमारे हाथमे काम बहुत आ गया है। हमारी एक किताब महीने भरमे छप कर निकल जायगी। दूसरी लिख रहे हैं। ऊपरसे 'सुधा' का कुल काम देखना पडता है। अम्माको प्रणाम। तुम्हारी बीबीको भेट-भेंट। तुमको किसमिश। लड़कोको असीस।

सूर्यकान्त

[२]

प्रिय पाठकजी,[२]

आपका पत्र मिला। एक प्रूफ जो पहिले आया था वह मै भेज चुका हूँ। लेकिन वह तो शायद एक ही फार्म था। बाकी दो फार्म वाला अभी नहीं मिला।

'अनामिका' मे श्रीमन् स्वर्गीय सेठ जी की लिखी भूमिका जायगी जो उन्होने उस छोटी 'अनामिका' मे लिखी थी। आपके पास 'अनामिका' पहले वाली होगी ही। समर्पण मै भेज रहा हूं। अगर 'अनामिका' की अनेक कापियो में से एक भी आपके पास नहीं तो सेठ हरगोविन्दजी से ले लीजिये। आपने पत्रमें मुझसे 'अनामिका' की भूमिका

---

१ – निरालाजीके साले जिनका कुछ दिन पहले स्वर्गवास हुआ। यह पत्र निरालाजीके सुपुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठीके सौजन्यसे प्राप्त हुआ।

२ – श्री वाचस्पति पाठक। पत्र कला-भवन, काशी के सौजन्यसे प्राप्त।

मॉगी है, अवश्य आपको याद न रही होगी। मैने आपसे यह भी कह दिया था कि सर्मपण आप जैसा चाहे लिखकर दे दें, जब आप यहॉ से गये थे।

मेरा पत्र महत्वपूर्ण है, इससे मालूम होता है, आप वदल कर बोल रहे है। महत्वपूर्ण तो है, पर आपकी समझमे वेदान्त कैसे आये? बनिया-कुल-मुकुट-मणि महात्मा गाधीने जब मुझसे कहा था—मै तो उथला आदमी हूॅ। आपको याद होगा मैंने जवाब दिया था—हम लोग उथलेको गहरा और गहरेको उथला कर सकते हैं।—अब मेरा पत्र इस दृष्टिसे देखते हुए फिर समझिये, तव आपको मालूम होगा, तुलसीदासने क्यो कहा था—सबसे अच्छे मूढ, जिन्है न व्यापी जगत गत!!!

मॉको प्रणाम

सस्नेह

—सूर्यकान्त त्रिपाठी

भूसामंडी
हाथी खाना,
लखनऊ
१९-१२-३८

[३]

भूसामंडी,
हाथीखाना,
लखनऊ

प्रिय श्री पन्त जी,

आपकी रचनाकी दोनो चिट्ठियॉ मिली, आज अभी अभी। मुझ पर आप कविता न लिखे, इस आशयका पत्र आपको लिख चुका हूॅ। मुझे भय था कि आपका कवि इस तरह गिर न जाय। मेरा आपका हिन्दी साहित्यके इतिहासमें अभिन्न सम्बन्ध है। मुझे सबसे बडी सफलता यही हुई, मै समझता हूॅ। लेकिन आपकी रचना देखकर मै हैरान रह गया। यह तो कवि और वही कवि जिसे मै प्यार करता हूॅ, लिख रहा है।

अधिक क्या लिखूॅ। एक बात कहता हूॅ, हिन्दीमे अपनी कल्पना शक्तिके लिए ही आप वेजोड़ समझे जाते है और अपनी अपराजिता भाषाके लिए, इसी मौलिक सागरकी ओर हिन्दीके नवयुवकोके हृदयके नदी-नद वहे हैं, वे आपसे कुछ हताश हो गये है उन्हे इसी ओजस्विनी वाणीका कल्पनामृत पिलाइए। हिन्दी बडी गरीब है कवि, कल्पनासे बडा धन साहित्यमे और नहीं। इति।

आपका

निराला

१. कला-भवन, काशी के सौजन्य से।

[४]

दारागंज,
इलाहाबाद

प्रिय डाक्टर,[1]

पत्र मिला। समाचार अवगत हुए। टिपणी 'हंस' वाली देखी। कुँवर चंद्र प्रकाशकी योजना (अभिनन्दनवाली) ज्ञात हुई। देश और विश्वकी स्थिति बुरी है। अभिनन्दन शोभा नहीं देता। अभी पन्द्रह-बीस साल तक यह अवधि बढ़ाई जा सकती है। यदि मेरा अन्त हो गया तो साहित्यमें अभिनन्दनीय व्यक्तिका टोटा नही रहेगा।

मेरे पत्र बहुत साधारण है, मेरे साहित्यमे साधारणतम। लिखे भी मैने इने-गिने आदमियोको हैं। उनमे साधारण जन भी हैं। अधिकांश जनोको आप जानते हैं। सचने सकलन कर रखा है, निश्चय नहीं।

पुस्तकोकी राइटके बारेमे मिलनेपर कहूँगा। छुडाकर वह राइट जातिको ही दी जा सकती है।

मै लिखने–पढनेमे रहता हूँ। अभी छुटकारा नहीं हुआ। तीन चार महीनेमे निकली किताबोसे नतीजा मालूम हो जायगा। 'कुकुरमुत्ते' को फिरसे सॅवारा है। छप रहा है। अबकी अकेला है। उर्दूमे भी छपेगा। बाकी रचनाऐं और कुछ इधरकी मिल-कर, छोटा पडा तो कुकुरमुत्ता भी रख कर, दूसरा सग्रह 'नये पत्ते' के नामसे निकाल रहा हूँ। इसका भी फारसी अक्षरोमे मुद्रण होगा। 'बेला' एक पुस्तिका इधरके गीतो की निकाल रहा हूँ। कुल मैटर 'नये पत्ते' को छोड़कर हिन्दीके लिये जा चुका। 'विष-वृक्ष' का अनुवाद प्राय समाप्त है। 'चोटीकी पकड' पूरी करनेके लिये लिखना शुरू करनेवाला हूँ। 'सखी,' 'प्रभावती' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' के भी दूसरे सस्करणकी तैयारी हो चुकी। इन्हीं उलझनोमे हूँ। जाड़ा भी अभी नहीं घटा। चैत दो हैं। एक तक फारिग हो जाऊँगा। 'साहित्यकार संसद' वाली महादेवीजी मेरी चुनी, अबतककी श्रेष्ठ रचनाओका संग्रह निकाल रही हैं, 'अपरा' नामसे। कागज सिर्फ २५० पृष्ठोंकी किताबका मिला है। संग्रह मैंने प्राय आधा लिख दिया है, आधेमे मैने निशान लगा दिये हैं देवीजी अपनी छात्राओसे नकल करा लेंगी। तबतक कुछ किताबे निकल जायेंगी। आपको ऑखोका सुख मिलेगा। एक सग्रह महा० पन्त० निरा० के १०० गीतोंका कर रहा हूँ वहींसे निकलेगा। प्रसन्न हूँ। अकेला बैठा झरोखेसे आकाश देखा करता हूँ।

आपका
निराला

१- डाक्टर रामविलास शर्मा। उन्हीके सौजन्यसे प्राप्त।

कवि निराला

रामविलास शर्मा

वह सहज विलम्बित मंथर गति जिसको निहार
गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार,
काले लहराते बाल देव सा तन विशाल,
आर्यों का गर्वोन्नत, प्रशस्त अविनीत भाल,
झंकृत करती थी जिसकी वाणी में अमोल,
शारदा सरस वीणा के सार्थक सधे बोल;—
कुछ काम न आया वह कवित्व आर्यत्व आज,
संध्याकी वेला शिथिल हो गये सभी साज।

अब वन्य जन्तुओंका पथ में रोदन कराल,
एकाकीपन के साथी हैं केवल श्रृगाल।

अब कहाँ यक्ष-से कवि-कुल-गुरु का ठाट-बाट?
अर्पित है कवि-चरणों में किसका राज-पाट?
उन स्वर्ण-खचित प्रासादों में किसका विलास?
कवि के अन्तःपुर में किस श्यामाका निवास?
पैरों में कठिन बिवांई, कटती नहीं डगर?
आँखों में आँसू, दुख से खुलते नहीं अधर!
खो गया कहीं सूने नभ में वह अरुण-राग,
धूसर संध्या में कवि उदास है वीत-राग!

अब वन्य जन्तुओंका पथ मे रोदन कराल,
एकाकीपन के साथी हैं केवल श्रृगाल।

अज्ञान-निशाका बीत चुका है अंधकार,
खिल उठा गगनमें अरुण,—ज्योतिका सहस्नार,
किरणोंने नभमें जीवनके लिख दिये लेख,
गाते हैं वनके विहग ज्योतिका गीत एक,
फिर क्यों पथमें यह सन्ध्याकी छाया उदास?
क्यों सहस्नारका मुरझाया नभ में प्रकाश?
किरणोंने पहनाया था जिसको मुकुट एक,
माथे पर वहीं लिखे हैं दुखके अमिट लेख।

अब वन्य जन्तुओंका पथमें रोदन कराल;
एकाकीपन के साथी है केवल श्रृगाल।

इन वन्य जन्तुओंसे मनुष्य फिर भी महान,
तू क्षुद्र मरण से जीवनको ही श्रेष्ठ मान;
"रावण महिमा श्यामा-विभावरी-अन्धकार,"
छागया तीक्ष्ण वाणोंसे वह भी तम अपार;
अब बीती बहुत रही थोड़ी, मत हो निराश,
छाया सी संध्याका यद्यपि धूसर प्रकाश;
उस वज्र हृदयसे फिर भी तू साहस बटोर,
कर दिये विफल जिसने प्रहार विधिके कठोर;

अब वन्य जन्तुओंका पथमे रोदन-कराल;
एकाकीपनके साथी है केवल श्रृगाल।

कट गयी डगर जीवनकी थोड़ी रही और,
इस वनमें कुश कंटक, सोनेको नहीं ठौर;
क्षत चरण न विचलित हों, मुँहसे निकले न आह
थककर मत गिर पड़ना ओ साथी बीच राह,
यह कहे न कोई — जीर्ण होगया जब शरीर,
विचलित हो गया हृदय भी पीड़ासे अधीर।
पथमे उन अमिट रक्त चिन्होंकी रहे शान,
मर मिटनेको आते है पीछे नौजवान।

इस वनमें जहाँ अशुभ ये रोते हैं श्रृगाल;
निर्मित होगी जन सत्ताकी नगरी विशाल।

निरालाकी जन्मभूमि बैसवाड़ा

सत्यरञ्जन

कानपुर-रायबरेली लाइनपर बीघापुर स्टेशनसे लगभग कोस भरपर गढ़ाकोला गॉव बसा हुआ है। लोन नदीको पार करने पर गॉवके कच्चे घर दिखायी पड़ने लगते हैं। और घरोंकी तरह चौपाल, छप्पर, दहलीज, ऑगन, खमसार, अटारीके नक्शे पर निरालाजीके पिता पण्डित रामसहायका मकान भी बना हुआ है। अवधका यह भाग बैस ठाकुरोकी बस्तीके कारण बैसवाडा कहलाता है। ताल, छोटी नदियॉ और नाले, घनी अमराइयॉ यहॉकी शोभा है। इसे हम अवधका हृदय कह सकते हैं। अवधीका सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता है। इस भाषामें ओज और कोमलता दोनोंका ही विचित्र सम्मिश्रण है। यहॉके किसान परिश्रमी, ताल्लुकेदार सरकारी पिट्ठू, छोटे जमींदार कमर टूटने पर भी निरकुशताके निबाहते जानेवाले, विप्रवर्ग दम्भी और निम्न जातियॉ बहुत ही सतायी हुई है। यहॉके काफी लोग बम्बई और कलकत्तेमें नौकरी करते हैं, परन्तु शिक्षा और व्यवसायमे उन्होने विशेष उन्नति नहीं की। कुछ दिन पहले हर गॉवमे दो चार परिवार ऐसे निकल आते थे जिनके लोग फौजमें सिपाही हवलदार, या सूबेदार तक होते थे। बडी दाढी या गलमुच्छें रखानेवाला पेन्शन भोगी यह वर्ग अब मिट-सा गया है।

अनेक दृष्टियोसे पिछड़े होने पर भी बैसवाडेकी भूमिने हिन्दीको अनेक साहित्यिक दिये हैं। पंडित प्रताप नारायण मिश्र, अचल गंजके पास बेत्थर गॉवके निवासी थे। इसीके पास झगड़ूपुरमे कवि शिवमंगल सिह 'सुमन' का जन्म हुआ है। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीके जन्म-स्थान दौलतपुरको सभी लोग जानते हैं। पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी मगड़ायर गॉवके है और इसी तरह हितैषीजी आदि अन्य साहित्यिकोने भी पुरवा तहसीलके गॉवमे जन्म लिया है। सरस्वती-सम्पादक निरालाजीके लॅगोटिया यार रह चुके हैं।

हिन्दीको बैसवाडेकी इस दैनका यह कारण है कि जन साधारणमे अब भी साहित्य की एक जाग्रत और सजीव परम्परा विद्यमान है। आज भी कोई ऐसा गॉव न होगा जिसमें दो-चार सौ कवित्त याद रखनेवाले दो-चार कविता-प्रेमी न निकल आयें। शामको किसी शिवालेपर कवित्त कहने वालोमे होड़ होती है तो सुननेवालोका मेला लग जाता है। जीवनके हर काममे और बात-बातमे कवियोकी उक्तियॉ उद्धृत करना यहॉकी बोल-चालकी विशेषता है। हल जोतते समय किमान अक्सर कह बैठते हैं, "वित्त-कवित्त-सबै भूले जब हाथ परी हलकी मुठिया," लेकिन भूलनेपर भी इन वित्तहीन किसानोके कंठसे ऐसे मौके पर कभी कवित्तके वे टुकडे फूटते हैं कि सुनकर एक बार चार्ल्स लैम्ब भी इनकी

उद्धरण-चातुरीकी दाद दे। गिरधर कविरायकी कुंडलियाँ, तुलसीदासकी रामायण, घाघ भड्डरीकी सूक्तियाँ और सैकड़ो दोहे और छन्द लोगोकी जवान पर हैं। आल्हाका तो पूछना ही क्या: आल्हा अवधकी अपनी चीज है। कौन ऐसा युवक होगा जिसने सुरती न खायी हो और आल्हा न गाया हो। आल्हा गानेमें समय नष्ट होता देखकर और घरके काम-धन्धे रुकते जानकर बड़े-बूढ़ोंने चेतावनी दी थी कि जो आल्हा गायेगा, उसे जूड़ी आयेगी, जो संगति करेगा उसे ताप हो जायगा और जो मूर्ख अपनी चौपाल में सुननेवाले ठलुओंको इकठ्ठा करेगा, उसका तो वंश ही नाश हो जायगा। लेकिन अन्य-पौराणिक वाक्योंकी तरह जनता पर इस 'रूलिंग' का भी कोई असर नहीं पड़ा।

आल्हासे कुछ कम रिवाज नौटंकी का है। जब तब नगाड़ेकी कड़-कड़-कड़-झुमके साथ आधी रातको टीपपर, "मुझको मरनेका खौफो-खतर ही नहीं" जैसे टुकड़े सुनायी पड़ जाते हैं। नौटंकी प्रेमियोका एक अलग ही वर्ग है। तिरछी दुपल्ली टोपी, जुल्फे तेलसे चुचवाती हुई, मुँहमें दुहरा सुरती या पान, एक पैरमे लम्बी धोती, और एक पैरमें उठी हुई; बहुत शौकीन हुए तो कानपर बीड़ी या चूनेकी गोली, हाथमें तिलवाई लाठी और पैरोंमें नुकीला जूता या शहरका स्लीपर—यह इनकी धजा है। गांवके ठलुए छैल और गुंडे बहुधा इसी वर्गके होते हैं।

शूद्रों और निम्न जातियोंमें सन्त कवियो, विशेष कर कबीरकी वाणीका बड़ा प्रचार है। इस साहित्य पर उनका इतना अधिकार है कि वे किसी भी साहित्यिक महारथीको उखाड़ सकते हैं। निरालाजी चतुरी चमारको अपने रेखा-चित्रमें इस बातका प्रमाण-पत्र दे चुके हैं।

होलीके दिनोंमें फाग और सावनमें झूलेके गीत सारी प्रजाकी सम्पत्ति हैं। नारी समुदायने अपने लोक-गीतोंकी अलग रक्षा की है। तिथि त्यौहार जाने दीजिये साँझको मन्दिरमें जल चढाने जायेंगी तो गायेगी, पानी भरने जायेंगी तो गायेंगी, चकिया पीसेंगी तो गायेंगी, मतलब यह कि जहाँ चार स्त्रियाँ इकठ्ठा हुई तो वे या तो एक दूसरेकी बुराई करेंगी या फिर गीत गायेंगी।

काव्य और सगीतके साथ कथाओंके रूपमे एक विशाल गद्य-साहित्य भी है जो अभी पुस्तकोंमे लिपि-बद्ध होकर मुद्रित नहीं हुआ। शायद ही कोई अभागा बालक हो जो सोनेके पहले दो चार कथाएँ न सुन लेता हो। बड़े-बूढ़ोंने अपनी जान बचानेके लिये यह नियम बना दिया है कि दिनमें कथा न सुनायेंगे। शास्त्रकी दुहाई देकर वे कहते हैं कि जो दिनमें कथा सुनायेगा, वह रास्ता भूल जायगा और सुननेवालेका मामा खो जायगा। इसी गद्य साहित्यके अन्तर्गत वे हजारों कहावतें और मुहावरे हैं, जिनमें जन पदकी भाषा आश्चर्य रूपसे सम्बद्ध है। भाषा और साहित्यकी इस लोक-परम्पराके कारण ही निर्धनता और अशिक्षाके बावजूद इस भूमिने आचार्य द्विवेदी और कवि निरालाको उनकी रचनाओंके लिये प्रेरणा दी है।

—:o:—

युगान्तरकारी कविके प्रति

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

हे चिर विदग्ध!
शैशव से ही
कुछ मूक चिताओ के सिगार
लेकर तुम दहके वन अँगार
निर्धूम प्रज्वलित वह्नि वेष
अपनी ही सीमा मे अशेष
करने को आतुर नाम-शेष
युग युग के कल्मष अनाचार
तुम प्रखर चण्ड मार्तण्ड
तुम्हारे उस उस में नई दृष्टि
ताण्डव का मुक्तोन्माद प्रथम
फिर उथल-पुथल फिर प्रलय-वृष्टि
हो नष्ट-भ्रष्ट जग जीर्ण-शीर्ण
फिर नई भूमि, फिर नई सृष्टि
तुम नव द्रष्टा विस्फारित नयनोंके आगे
आश्वस्त अभय जीवन प्रसार
लेकिन जर्जर जग रूढि-ग्रस्त
पाया न समझ, मनुके बेटेका अहंकार
आया यौवन
तुम झूम उठे
झूमा मधुवन
उन्मद कनकन
सब रहे देखते लुटे-लुटे
वृन्दावन कुञ्जोमे मनहर
फिर किसी विगत मूर्च्छाका स्वर
कल्पना लोकमे लौट पड़ा मन्थर, मन्थर,
बाजी वंशी, झंकृत वीणाके तार-तार
सहसा सिहरी पुलकित करीलकी डार-डार

तुम आए समुद सहास तरल
ले एक हाथमे सोम, अपरमे हालाहल,
वह कौन कली, जो तुम्हें देख मुसका न उठी ?
वह कौन लता, जो झूम-झूम कर नहीं झुकी ?
वह कौन सुछवि, जो तुम्हें देख कर नहीं लुटी ?
कितनी रजनीगंधा, शेफाली, जुही
नहीं बँध गईं
मौन आलिंगनमें
कितने अधरोने ढाल दिया जीवन
का रस सर्वस्व नहीं
मधुकी पहली ही छलकनमें
मस्तक पर वन-बेला, चम्पक
नत हरसिंगार
पद-वन्दनमें
लेकिन सहसा हत-स्तम्भितसे
आश्चर्य-चकित सबने देखा
उन पतले-पतले होठोमें भी
खिंची एक हल्की रेखा
जिसमे मदिरा की लाली भी
जो हालाहल सी काली भी
सब चीख पड़े कवि यह क्या है ?
किस महाप्रलय की तय्यारी ?
तुम दोनो हाथो पीते क्यो
मधु और गरल बारी बारी !
आरक्त नयन कविने खोले—देखा कुछ पल
मुसकान-मूक उत्तर केवल
तुम मन्त्र-मुग्ध
हे चिर विदग्ध !

[२]

आर्योंके पौरुष मूर्त्तिमान
द्वादशादित्य
कोई चाणक्य तुम्हें पाकर कह उठता
'जय विक्रमादित्य'
वह विरल विरस छवि एकाकी—

मै सोच रहा किन हाथोने ? किस तरह
तराशी होगी, विना हाथ डोले
—क्या साँस रोक या समाविस्थ ?—
किस छेनीसे, कैसे आँकी ?
जिस शिल्पीने विख्यात रोमके
महावीर सीज़रकी भी मूर्त्ति तराशी थी
वह कहीं देख पाता तुमको
तो एक बार हिल जाती उसकी भी टाँकी !
जाने कब शिवके जटाजूटसे
भागीरथी प्रथम छूटी
कब अनायास वाणी फूटी
आक्षितिज प्रतिध्वनित हुआ मंद्र-घन गर्जन-स्वन
आसिंधु संतरण करता था वह राग प्रमन
उपवनकी उर्वर मिट्टीमे
युग-युगसे संचित जो सुवास
पाकर नव स्पर्श तुम्हारा वह फूटी सहास
किस परिजातके 'परिमल' की
मृदु गन्ध अन्ध
फूटी बनकर निर्बन्ध छन्द
कू-कू कर कुहुक उठा उपवन
गमका कण-कण
यों शिथिल शीतका हुआ अन्त
हेमन्त बन गया नव वसन्त
उत्फुल्ल प्रकृतिके निभृति कुंजसे
आई मीठीसी पुकार
जैसे वर्षाकी बूँदो पर
चढ़ दौड़ी हो पहली मलार
जो मत्त समीरण का रस पी
जड़-चेतन विमोहिता वन-श्री
क्षण भर हरिणी-सी चकित खड़ी
हो गन्ध लुब्ध तव चरणो पर यो लोट पड़ी
जैसे हिमगिरिके पद-तलसे
सागरकी लहर, छहरती सी टकरा जाए
तन फेनोज्ज्वल
मुख हासोच्छ्वल

शिवमंगल सिंह 'सुमन']

उद्दाम तुम्हारा यौवन था
उमड़ा निर्झर, फूटी धारा
चट्टान ढहीं, बंधन टूटे, टूटी कारा, टूटी कारा
कुछ मेड़ बाँधनेवालोंका भी साथ-साथ वारा-न्यारा
दृग-दृगमें नूतन कौतूहल
यह कौन, कौनका कोलाहल
जिसमे पहला ही फूल
पिरोया गया अभी—
तुम उस मालाके धागेसे
गहरी निद्रामें जागेसे
अस्फुट स्वर धीमेंसे बोले—
'यह अनामिका'
फिर फूटी तान नई, गान नए,
माल बनी 'गीतिका'
मुखरित उपवन-आँगन
छाया प्रगमन प्रशमन
गमके उठीं वीथिका।
फिर उठी मन्द्रसे तार तलक
फिर तार उदार मुदार झलक
कंपनकी वह वंकिम हिलोर
जिससे विद्युत-कण बंधे
और-आकर्षित करते ओर छोर
कुछ वाह्य-दृष्टि, कुछ निजमें रम
तुम एक विरोधाभास स्वयम्
तुम निर्गुण सगुण--
अर्द्ध नारीश्वरके रूप परुष-कोमल
तुम विषम समन्वित अमिय-गरल
तुम सुराधार या सुरसरि जल
दोनो समान कर चुके, शुद्ध मनका नियोग
क्या विरति और आसक्ति और क्या योग-भोग
तुम आस्ति नास्तिके सन्धि-पत्र
'साधना मध्य भी साम्य'
तुम्हारा वल पौरुष

चिन्ता की धारा, मुहुर्मुहुर्विच्छिन्न
धधकती भ्रान्ति विवश !
तुम युग के वह दुर्जय प्रवाह
जो त्रस्त-ध्वस्त कर रहा विषमता के कगार
' जो महाशक्ति राम के वंदन में हुई लीन '
वह फूट पड़ी बन महानाश का मुक्त द्वार !
चाहते कथा कहना
युग-युग की अपर व्यास ?
या पुन. शक्ति-आराधन ही
मर्यादित संयम ' तुलसीदास ' ?
तुम मुक्तक और प्रबंध
कभी पंखुरियोंकी झीनी फुहार
फिर युगःसन्धि, जागरण
सिन्धुका महोल्लास, विक्षुब्ध ज्वार !
तुम अनय विषमताके विरुद्ध
पावक-सायक-संधान
आज आकर्ण धनुर्ज्या खड़े तान
आर्योंके पौरुष मूर्तिमान !

[२]

हे नूतन छविके कलाकार !
गुंजित अनहद रव सहघोर
अब क्यों उदास
अस्ताचलकी लाली निहार
लग रही प्यास ?
थक गए ? ओंठमें पपड़ी, रुंधा कंठ
सजल आँखे धूमिल
सच, इस मंजिलका ओर छोर
पाना मुश्किल ।
पर अभी तना है वक्ष
धमनियां रक्तमयी
छाती धड़-धड़
मांसल जंघा
उन्मुक्त सांस
दृढ़-अडिग चरण

इसलिए बढ़ो
गिरि–श्रृंग चढ़ो
आरहे अन्यथा जो पीछे
देखते तुम्हारी चरण-रेख
क्या सोचेंगे ! क्या मार्ग-भ्रष्ट ?
या विधि-विडंबनाका कुलेख ?
आगे समाप्त सब चिह्न
नहीं दिखलाई दोगे दीप्ति वरण
तो नव उत्साही नाविक भी
हिचकेंगे शायद खेनेमे
डगमग नौकाएँ सिंधु-तरण ।
तुम सोच रहे हो संभवतः
आधे जीवनके पार खडे
आजीवन समरारूढ झेलते वार
आन पर रहे अड़े
फिर भी तम ज्योंका त्यो प्रशस्त
मानवकी आत्मा पड़ी हुई
पहली ही जैसे अस्त-व्यस्त
आजीवन जलना व्यर्थ गया
सारा श्रम हाय ! हुआ निष्फल
सुन रहे, कर रहा व्यंग भरा
फिर अट्टहास रावण खल खल'।
जिससे जिसकी चुप रही व्यथा
पहले पहले यह सुनी कथा,
"बह गया स्नेह निर्झर सम्बल
रह गया रेत ज्यो तन केवल'
क्या–क्या दिन देखे, क्या न सहा ?
क्या क्या विपदाएँ नहीं ढहीं ?
फिर भी तुम ? जिसने आज तलक
अपनी धीमी अस्फुट उसास भी
मुक्त व्योमसे नहीं कही।
तुम एकाकी, अजनवी बने
दर दर घूमे, भटके व्याकुल

(सूनेमें सिसके अकुलाए)
पर देख नहीं पाया कोई-
गीले कपोल, भीगा आँचल।
यद्यपि न छिपा, जानती मही
दुख ही जीवनकी कथा रही
फिर भी तुम नव-स्रष्टा, शिल्पी, उद्‌धत मनोज,
व्यापक कल्पना, विधुर-अतर, उन्मुक्त ओज
जब जब आया भूचाल
लिया तुमने सँभाल
करतलगत कर, उफान,
पत्रों की छातीपर सयत उतार
झंकृत कर डाले, वीणावादिनिकी
वीणाके सप्त तार
पर वात्याचक्र, प्रभंजन
आवर्तित मडल
घेरे था, धूम्र कुहासे-सा
सब भू-मंडल
पिस गये उसीमें, तुम
जिसमे पिसता आया जर्जर समाज
जिसने धरतीकी सुख-समृद्धि
कर डाली भस्मीभूत आज
सदियोंसे चूस-चूस जिसने
कर दिया खोखला अंतर-तन
जीनेकी इच्छा व्यंग बनी
हो गये लुप्त जीवन-साधन
दाने-दानेको तरस गयीं अगणित आँखे
दो बूँद दूधके लिये ललक
हिचकी लेकर शिशु हुए मौन
माताओंकी छाती विदीर्ण, अवरुद्ध कंठ
रह गई कलख
बेबरसे बिखर गये कितनी साधोंके धन
कृमि-कीट सदृश
फुटपाथों पर
मनुकी प्यारी संतान मिट गईं
बिलख बिलख।

कितने उद्भट भट कलाकार
जो देश-जातिके स्वाभिमान
जिन पर युगका दायित्व, भार
हत, आयुक्षीण, चल दिए
प्रज्वलित, विपपायी
मै पूछ रहा हूँ अनाचारकी सत्तासे
युगकी इस विषम व्यवस्था से
इस विभीषिका का कौन
आज उत्तरदायी ?

किस हिंसक पशुकी दाढों से
उन्मुक्त हरिण, भयभीत, त्रस्त ?
किसने मेरे कवि का जीवन
कर डाला हतप्रभ अस्त-व्यस्त ?
किसकी शोषण की भट्टी मे
जल गयीं युगो की आशाएँ
माका दुलार, भाई-भाईका सहज प्यार
विष ही विप चारो ओर
भयानक आर्त्तनाद, घुटती साँसें
करुणा विगलित कातर पुकार
ओ निर्दय तस्कर! नर-पिशाच
युग माँग रहा इसका उत्तर
प्रतिशोध माँगता है तुझसे
जन-वाणीका उत्तेजित स्वर
कलके पदमार्दित उठ बैठे
हो सावधान!
ललकारोपर ललकार
बज रही रण भेरी
जन-जन जागे हुंकार उठी
जलती मशाल
तम काँप रहा
पौ फटने मे थोड़ी देरी
इसलिए शक्ति-पूजन हो फिर
नव दुर्गा अष्ट-भुजा कालीका आवाहन
अपना बल-पौरुष याद करो, अवरुद्ध कंठ
को वाणी दो, घर-घर मे रणका आमन्त्रण

कह दो कवि, इस पूर्णाहुति मे
पीछे न रहे कोई
घर घर मे गूँज उठे युग की गुहार
गंभीर-घोष घन-ओज, तुम्हारा फूट पड़े
"जागो फिर एक बार"
हे महावीर ! क्या याद दिलानी होगी फिर
प्रक्षिप्त तुम्हारी महाशक्ति
जीवनानुरक्ति
जो समिधाके प्रभाव मे अब तक पडी रही, बनकर विरक्ति
युगकी दानवता, हिंसा, शोषण, अनाचार
का आते ही मन मे विचार
"तोडता बन्ध—प्रतिसन्ध-धरा—हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढता समक्ष
'शतवायु वेग बल' डुबा अतलमें दीन-भाव"
आप्लावित करदो वसुन्धराके सब अभाव
आरही नयी पीढी युवकोंकी साथ-साथ
तव चरणो पर निज झुका माथ
उत्सुक अमंद
दृढवती, सजग, सोचती हुई, जिस जगह
गिरेगा देव, तुम्हारा स्वेद-बिन्दु
हम वहीं तौल देंगे अगणित सिर रक्त-स्नात
सगठन हमारा देख शत्रु हो रहा पस्त
चाहिये हमें तो सिर्फ तुम्हारा वरद हस्त
फिर देखो तुम, मेरे फकीर, अलमस्त
हम कोटि-कोटि जनका लेकर विश्वास अमर
कंठोमें जन-जनकी विह्वल आकाक्षाका नव मुखरित स्वर
दुर्गम पथपर
बढ चले निडर
तम-तोम रौंदते हुए
कंठमे अनल गान
शीघ्राति शीघ्र लानेको
वह स्वर्णिम विहान
जिसकी शीतल छाया मे होगा
शाति-स्नेह-सुख नव सर्जन

सब विश्व एक परिवार, एक घर-बार
एक चूल्हा आँगन
फिर उपवनके कलि-कुसुम विवश
पोषक रस, खाद्य बिना परवश
इस तरह नहीं झर जाएंगे
मेरे कवि! पुत्री-पुत्र किसी मानव के
औषधि-दूध बिना, अकुला, अकुला
इस तरह नहीं मर जाएँगे
सब पुलक हुलास भरे दधि-मुख
पहने घूमेंगे चीनांशुक
दर-दर मारा न फिरेगा फिर
युगका सर्वोत्तम कलाकार
यों धूल-धूसरित मलिन वस्त्र
पैरोंमें फटी बिवाई ले
बेचता फिरेगा नहीं
लेखनीका अमूल्य सर्वाधिकार।
स्वागतमे कलियाँ बिहसेंगी (फूटेंगी)
सौरभ देगा आँचल पसार
कण-कण अपनत्व लुटायेगा
सिमटे सिमटेगा नहीं प्यार
उस दिनकी बाट जोहते हम
जब जनयुग की महिमा अपार
उद्भासित होगी कण-कण मे
खुल जायेगा बहु जन-हिताय
जन-सस्कृतिका नव मुक्ति-द्वार

सर आँखोंपर ले तुम्हें
सभी पाकर फूले न समायेंगे
हे देव, तुम्हारी वाणी से
गृह-गृह मुखरित हो जायेंगे
गद्गद् उर, अपलक नयनो से
अभिमान सहित तुमको निहार
न्योछावर होंगे बार बार
हे नूतन छविके कलाकार!

निरालाजीके संस्मरण

'मुंशी'

१

'हंस' के भूतपूर्व संपादक और आजकलके लब्ध-प्रतिष्ठ प्रगतिशील लेखक श्री शिवदानसिंह जी चौहान उन दिनो मेरे यहाँ पधारे थे। उनके साथ एक और कॉमरेड थे। भैया (श्री रामविलास शर्मा) की गैरहाजिरीमे इन लोगोको मै ही खाना खिला रहा था। वातचीत चली, निरालाजी भी विषय-सूचीमे आये। मैने अपनी प्रतिभा प्रकट करनेके लिये उनसे "रामकी शक्ति पूजा" का कुछ अश सुनानेकी आज्ञा मॉगी। उनकी अनुमति पाकर "रवि हुआ अस्त ." कह चला और सीधे "हनुमत केवल प्रबोध" पर ही सॉस तोडी। दोनों पहले मेरे मुँहकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे, जो बन्द होने पर ही न आता था; बादमें एक दूसरेसे मशविरा किया, "कुछ समझ मे आया?" और जैसे किसी पूर्व-निश्चित आदेशके अनुसार दोनोने सिर भी हिला दिया। मुझे आश्चर्य हुआ।

वातचीत आगे बढ़ी, चौहानजीने निरालाजीसे भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। दस दर्जेतक पढे लडकेको जैसे राजसिंहासन मिला हो, निरालाजीको 'हंस'के सपादकसे इंट्रोड्यूस करना था। अस्तु, भोजन समाप्त होने पर हम लोग निरालाजीके कमरेको रवाना हुए। जीना चढना ही एक मुहीम थी। शिवदानसिंहजी पतली हड्डीके आदमी हैं मुझे भय था, कहीं पैर फिसलनेपर जमीन न चूमने लगें। बहुत धीरे-धीरे चढकर हम लोग ऊपर पहुँचे। उन दिनों निरालाजी लल्लूजीके कमरेमे रहते थे। तस्वीरोसे कमरा सजा था। सामने दीवाल पर एक गोल आईना लटका था। एक विशाल पलंग पर रजाई ओढे, निरालाजी घर्र-घो घर्र घों कर रहे थे। मैने जगाया। पासकी चारपाई पर कॉमरेड और 'हंस'-सम्पादक बैठे थे। निरालाजीने करवट ली, रुख बदला। पूछताछका अवसर न देकर मैने काम हाथो लिया · "आप 'हंस' के सम्पादक श्री शिवदानसिंह चौहान हैं।" निरालाजी एकदम उठ बैठे। रजाईके उत्तर कोनेको पकड, उसे उलटकर, पैरों तले फेका। रजाईमे अस्तर न था। डोरोंके टॉके पहलोको एकताके सूत्रमे बॉधे थे। निरालाजीका हाथ लगा, बेचारोको स्वतंत्रता मिली,—इधर-उधर उड चले। निरालाजी हतबुद्धि हो चारों तरफ नजर दौडाने लगे। कुछ अरसे तक यह राज उनको समझमें न आया। मैंने याद दिलाई "निरालाजी, रजाई फटी है।" आनेवाली आपत्तिके इंतजारमे ऑधीके झोंकेसे डरे हुए चिरकुले की तरह शिवदानसिंहजी ऑखोंमे खामोशी डाले, सिकुड़े हुए बैठे थे। रजाईकी ओर

ध्यान जाने पर निरालाजीका भाव बदला। यह रहस्य इतना भौतिकवादी होगा, इसका उन्हें ध्यान न था। कचनारकी कलीसे पतले होंठ खिल उठे। तभी चौहानजीकी जानमें जान आयी। ज़मीन पर इतस्तत: छाये हुए रुईके पहलोंको बीन-बीनकर मैं निरालाजी को देता जा रहा था, वह उन्हें खाली खानोंमें भर रहे थे। साहित्यिक चर्चा भी चल रही थी।

२

निरालाजीके सुपुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठीकी पहली शादी थी। उन दिनों निराला जी भूसामंडीमें रहते थे। अच्छे-बुरे सभी तरहके साहित्यिक टोह लेते हुए ११२ मक़बूल गंज आते थे, उन्हें यथा-स्थान पहुँचानेका कार्य कभी-कभी मुझे भी मिलता था। श्री जानकी वल्लभजी शास्त्री पधारे थे। एक इक्का किराये पर किया; भूसामंडी चले। इक्का भी श्री शास्त्रीजीके से ही डील-डौलवाला था; सड़क पर घूम-घूमकर चलता था। घोड़ा किसी नये साहित्यिकके ही समान एक-एक कदम पाँच-पाँच मिनट पर रखता था, रहस्यवाद और आध्यात्मिकता उसे रह रहकर पीछे घसीटती थी, मगर प्रगतिकी चाबुक खाकर चलने पर मजबूर होता था। कसाई-बाड़ेकी सड़क नये घोड़ोंके लिये मुसीबत है, इस चौराहेसे उस चौराहे तक न मालूम कितने गढ़े हैं, रबड़ छंदके ही समान कभी चौड़ी और कभी सकड़ी होती चली गयी है। इक्केवानने बहुत सँभालने की कोशिश की, किन्तु घोड़ेने पैर पसार दिये। हम लोग पैसे बीनने लगे।

कुछ सोचकर इक्केवालेने इस बार थोड़ा बोझा मुझपर और थोड़ा शास्त्रीजी पर लदाया और कहा—इक्का कुछ दूर खाली चलेगा, अच्छी सड़क आनेपर सवारी कीजियेगा। हम लोग मजबूर थे।

कुछ दूर बाद फिर सवारी की; मगर इस बार, घोड़ा सतर्क हो गया था। उसने सोचा, यह साहित्यिक पहुँचे हुए मालूम होते हैं, थोड़ा यथार्थवादका ज्ञान कराना असंगत न होगा, बोझा ढो—ढो कर मेरी पीठ गयी, यह बँगला पानकी तरह अब भी नये हैं, देवी सरस्वतीकी ही बंदना की, मुझ पर ध्यान भी नहीं गया। उसने अपनी दशासे परिचित करानेका दृढ निश्चय कर लिया। कुछ दूर चलकर ऐसी कलाबाजी खायी कि इक्का उलट गया। शास्त्री जी की मुद्रा गंभीर थी, समर्थ लेखकोंको उन पर कलम उठनेका साहस प्रायः कम होता था, उनके पाडित्यसे सभी प्रभावित थे। परन्तु, उस घोड़ेने वह काम कर दिखाया जो और न कर पाये थे। शास्त्री जी की मन्द्र-स्वर-उतार, स्तर-स्तर पर बिहार करनेवाली संस्कृत-गर्भित वाणी काफ़ूर हो गयी, बेचारे, सकर्मक क्रिया-पूरित छोटे-छोटे टुकड़े बोलने लगे। निराला तक पहुँचते—पहुँचते पाण्डित्य धो डालना पड़ेगा, यह कौन जानता था। इक्केवान साहित्यिक न था, सड़-सड़ चार चाबुक घोड़ेकी पीठ पर रेत दी। घोड़ेकी ऐंठ सीधी हो गयी, एप्लाइड साइकॉलजीका प्रयोग दिमाग़से उतर गया, उठ खड़ा हुआ। मेरी क्या दशा थी, क्या लिखूँ। भूसामंडी

पहुँचना गयाजीकी यात्रा हो गयी थी। रो-धो कर मकानके सामने पहुँचे। खिड़कीसे झाँका। निराला जी अँधेरे कमरेमे "भूधर ज्यो ध्यान-मग्न," बैठे थे, मशालकी तरह आखे जल रहीं थीं। मैने शास्त्रीजीके आनेकी सूचना दी। कमरेके बाहर निकले, इक्केवालेको पैसे देने लगे। मुझे ताव आगया, इक्केवालेको गालियॉ देने लगा, "बदमाश, पढे लिखे लोगोकी इज्जत लेता है।" निरालाजीसे पूरा किस्सा कह सुनाया, मुझे न मालूम था उन पर प्रभाव उलटा पड़ेगा। बोले, "बहुत टिपिर-टिपिर कर रहे हो, जरा बोझा ढोना पड़े तो मालूम हो, खानेको दाना नसीब नहीं होता, आप उसे मोटरका इंजन समझे हैं। जैसे डेढ पसलीके तुम हो, वैसा घोड़ा, उसने इक्का उलट दिया तो क्या बेजा किया। तुम तीन सवारियॉ लाद सकते हो? डाक्टर रामविलासके भाई हो, रवडी-मलाई खाते होगे।" आगे बढकर इक्केवानको मजूरी दी, उसकी सलामी लेकर कमरेके भीतर हो रहे। मैं तमाशा देखता ही रह गया।

३

श्री जानकी वल्लभ जी शास्त्री भूसामडी पहुँच कर कुछ समय तक निराला जी के साथ कमरेमे बैठे रहे। इधर उधर की बाते हुई। कुछ समय बाद सामने चिराग जल उठे, कमरेमें भी अधेरा छा गया था। निराला जी ने छत पर चलनेकी बात कही, हम लोग उठ खड़े हुए। ११२ मक़बूलगजसे भूसामंडी तक हम लोगोंके लिये गया यात्रा हुई थी, ऊपर पहुँचना कम साहसका काम न था। पहले ऑगन तक पहुँचना पड़ता था, फिर जीना पानेके लिये चोरकी तरह इधर उधर टटोलना पड़ता था। जीनेसे छत तक जाना एक भूल भुलैंया थी। शास्त्री जी अँधेरेमे चौखटके पास खडे कुछ ढूँढ रहे थे, परेशान से थे। दरवाजेसे सिर निकाल कर इधर-उधर झॉका। कुछ न मिला। शायद पदत्राणो की तलाश थी, पहन तो आये थे, कही इक्केवालेने बदमाशी तो नहीं की। निरालाजी यह सोच कर कि हम लोग पीछे-पीछे आरहे हैं, जीनेकी ओर बढते चले ज़ा रहे थे। ऑगनका हलका प्रकाश उनके अगल-बगल झॉक रहा था, तभी मैंने देखा, उनके हाथ मे दो जूते लटके थे, जिनकी काली पालिश पर प्रकाशकी चमक पड रही थी। मैने शास्त्रीजीको धीरज बॅधाया, "शायद आपके जूते निरालाजीके पास हैं।" शास्त्रीजीने घूम कर देखा और. . । उनकी मुद्रा अवलोकनीय थी. किंकर्तव्य-विमूढता और आश्चर्य-मिश्रित ग्लानिका ऐसा सुन्दर नज़्जारा मैने पहले न देखा था। दो अगुल जीभ दॉतोके बाहर निकल कर रह गयी। इसी समय निरालाजीने घूमकर देखा और बोले, "आपके जूते मै लिये चल रहा हूँ, परेशान न हो।"

४

उन दिनो निरालाजी अस्वस्थ थे। टेपरेचर १०३–४ डिगरीसे कम होता ही न था। डाक्टर टी बहादुर उन्हें देखनेके लिये आये थे। घर पर बीमारकी देख-रेखके लिये अकेला मै था, बादमे चौधरी राजेन्द्रशंकरजीने आकर बडी सहायता की। डाक्टर टी.

बहादुरका कारोबार अच्छा चलता है; लखनऊके प्रतिष्ठित डाक्टरोमें हैं; मोटर पर चढ़कर आये थे।

बीमारको देखकर उनके मनमें कुछ प्रश्न उठे जिन्हें वह भरसक मनमे ही रखनेका प्रयत्न कर रहे थे। केश-पाशको देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कोई कलाकार होगा; बातचीत करनेके ढंगसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह व्यक्ति विद्वान है, पूछा "आप क्या करते हैं?"

निरालाजीने उत्तर दिया, "मै कवि हूँ।"

अरे यह कवि है, टी. बहादुरने सोचा। कवियोंसे उदासीन होनेका कारण भी था। वह सोच रहे थे—आजकलके कवि कुछ अस्त-व्यस्त रूपरेखा धारण किये रहते है, कुछ पढे लिखे होते है, कुछ केवल बात-बनाव करनेवाले, ऐसी बात करेंगे मानों युग-प्रवर्तक यही हैं, अपनेको कालिदास और भवभूतिसे दूसरा समझना तौहीन समझते हैं. कहते हैं, कविता लिखना हर एक काम थोड़े ही है, यह नहीं सोचते कि नब्ज देखना भी हर एकका काम नहीं। शकल देखिये तो बालोके लच्छोमे सृष्टिका उत्थान-पतन होता है; आँख द्वैत और विशिष्टाद्वैतकी पहेलियोका रंगमंच बनी हैं, कपोल और नासिकामें शिव और सौंदर्यकी आभा झलकती है, हाथ पैरोकी बनावट में रहस्यवाद और यथार्थवादकी रूढियॉ सुलझतीं हैं, अगर कुछ गहरे पैठनेका प्रयत्न करो, तो झुंझलाकर कह उठते हैं, "हम कवि हैं, कविको इन सब बातोसे प्रयोजन!" निरालाजीसे फिर पूँछा, "आपकी कविताऍ छपती हैं?"

निरालाजीको धक्का लगा। वर्तमान समाजके प्रतिष्ठा-प्राप्त वर्गके एक पढे-लिखे व्यक्ति द्वारा एक ऊँचे साहित्यिकका यह सत्कार था। भारी पलके उठाकर, झपती आँखोसे डाक्टरको देखकर रह गये। यह उनका दोष न था, आजका साहित्यिक वर्ग ही ऐसा हैं जिसमे सब तरहके आदमी घुसे हुए हैं। शोहरत किसीको बुरी नहीं लगती, मेहनत कोई कोई करते है। थोड़ा बहुत दोष पुरानी प्रणालीका भी है, शारीरिक स्वास्थ्यके लिये डाक्टर है, मानसिक स्वास्थ्यके लिये साहित्यिक—समाजके लिये दोनो आवश्यक हैं, किन्तु डाक्टर साहित्यिकको जानता भी नहीं। निरालाजी चाहते तो डाक्टर टी. बहादुर से पूछ सकते थे, "आप नाड़ी देख लेते हैं।" किन्तु वह समाजके मन.स्तरसे भली प्रकार परिचित रहे हैं, सभवत यह उनके लिये कोई नयी परिस्थिति न थी। टी. बहादुरके सवालका उत्तर देते हुए कहा, "जी, मेरी कविताऍ प्रायः हर पत्रमे छपती हैं।"

हर पत्रमे—डाक्टर टी॰ बहादुरने सोचा—यह "हर पत्र" का झॉसा दे रहा है, पूछा, "क्या सरस्वती, माधुरीमें भी?" निरालाजी स्वतंत्र मानसिक अवस्थामें न थे, थकावट थी; परेशानी भी। सूक्ष्ममें कह उठे, "मुझे सरकारने

इम्पीरियल आनर दिया है; रेडियोपर पॉच मिनट कविता पढनेके लिये ऊँचीसे ऊँची रकम मिलती है, किन्तु कुछ विरोधके कारण इसे मै ग्रहण नहीं करता, रेडियो नहीं जाता।" डाक्टर टी. वहादुरका आसन हिला, पैसेका रोव ढीला पडा। निरालाजीकी बीमारीसे लाभ उठानेका विचार छोड अब उन्हे ठीक करनेमे परिश्रम करने लगे।

५

निरालाजी इलाहाबादसे आये थे, चबूतरे पर जमे। कुछ देर इधर-उधरकी बात करनेके वाद एक सिगरेट मॉगी, डी-लक्स लाकर दी गयी। वातचीत करते जाते थे और सिगरेटके कश खीचते जाते थे। सुलगते-सुलगते जब आधीसे कुछ कम रह गयी तो सामने गलीमे फेंकदी। इलाहाबादके न मालूम क्या-क्या किस्से सुना रहे थे।

वात करते-करते एक बार सहसा घूमकर निरालाजीने देखा कि सिगरेट जल रही है या खत्म होगयी। सिगरेट अभी बुझी न थी, उठे और उसे उठा लाये। एक कश खींचा; कुर्सी खीच कर बोले, "लोग पैसेका पूरा उपयोग करना नहीं जानते।" एक कश और खीचा और गलीमें फेक दी। वातचीत फिर जारी होगई। चबूतरेके सामनेसे गुजरनेवाले लोग एक नजर इस तरफ जरूर डालते थे। निरालाजी बातें इधर कर रहे थे लेकिन ध्यान दूसरी ओर था; सिगरेट का डेढ अगुलका टुकडा अब भी धुँआ उडा रहा था। एक बार उसे फिर अपनाया और दूर फेक दिया।

अब वह इतनी कम होगयी थी कि उँगलियोंमे रखना मुश्किल था। कुर्सी घुमाकर, उसकी ओर पीठकर, इस बार जमकर फिर उसकी ओर ललचायी हुई नजरोंसे देखा। धुआँ उड रहा था मानों अपने निराश्रित किये जाने की शिकायत कर रहा हो। कुर्सी छोडकर झूमते हुए निकट पहुँचे, अदबसे झुककर उसे चुटकीमे उठाया और बोले, "इतनी सी रही गयी, मगर तबियत नहीं मानती।" उन्हें यह विश्वास दिलाया जा रहा था कि एक और सिगरेट मॅगायी गयी है, किन्तु इस ओर उनका ध्यान ही न था। बचे टुकडेको ओठों पर दाबकर एक लम्बा कश खीच। फिर कुछ सोच कर पैर के नीचे दाबकर उसे कुचल डाला।

झींगुर, बदलू, लुकुआ और महगू की[1]

निरालाजी महाराजको चिट्ठी

प्रभाकर माचवे

महाराज, दंडौत। थोडेमें कही भौत। समझना जी
आपने जौ लिखी बात—
जमींदार, गोड्इत, सिपाहीकी,
बिल्कुल हमारे मनकी रखी।
देवी सरसुतीकी सुनाई अस्तुती हमे,
जामैं लिखो—'ज़मींदारकी बनी,
महाजन धनी हुए है।
जगके मूर्त पिशाच,
धूर्तगण ग़नी हुए है।'
हम तौ यही कहे—
तुम्हीं एक हमारे रहे,
न ससुरे ये बड़े बडे अखबारवाले,
और ये नेता टेढी स्फेत्त डोंगी पैन्नेवाले.
नहीं कोई अपने,
सब सारे ज़मींदारके, उसके जो मिलका मालिक है।
हम बिके हैं कौडीके दाम
और ये उधेडें चाम!
कैसे देस-भगत ये बगुला-भगत बने,
हमारा ही लेके नाम, हमारी ही मौत पर ठने!
न अब चलनेकी,
ज़्यादा दिन ये नेकी।
आगयी है बात अब गलेतक
हममे भी हैं चेटक,
हममे भी परताप,
कबतक चूसेंगे आप?

---

१. 'नवे पत्ते' की नयी कविताओ के किसान पात्र। देखिये 'नये पत्ते' पृष्ठ ५५, ५६, ८५, ८७, ९९।

" गाँव के अधिक जन कुली या किसान हैं;
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार,
बहेना कुम्हार, डोम, कुहरी, पासी, चमार,
गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार,...
मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार,
लुच्छू नाई, चली कहार,"
ये बदलू के तरफ़दार।
हम सब जब एका कर, छोड़-छोड़ अपने घर,
हाँका करेंगे,
सर उठा लेंगे धरतीका,
आसमान फीका,
और बिगुल बजे क्रांतीका !
जानते हो, कविने ये बात कही—
" मगर खंजड़ी न गई। " +
पुरानी हो, भई,
पर आल्हा की गत नई !
सुना तुम इक्यावन बरस पार कर गये।
हमारी भी दुआ लो।
हमारे लिये अब लिखो !
सुना इस लिखाई के ही
पीछे तुम पागल हो।
हमारे ही लिये लिखो !
हम तो हैं अनपढ़ सब, गँवई बिल्कुल गंवार
इस वास्ते कह दी, लिख दे लकीरें चार।
नाम जिसका है—

——प्रभाकर माचवे

निरालाजी और हिन्दीके प्रकाशक

रामविलास शर्मा

अपनी शोकपूर्ण कविता "सरोज-स्मृति" में निरालाजीने बड़ी व्यथासे लिखा है:

> **दुख ही जीवनकी कथा रही,**
> **क्या कहूँ आज जो नहीं कही!**

दुखकी इस कथाका सम्बन्ध रहस्यवादकी समझमें न आसकने वाली गुत्थियोंसे नहीं है। इसका सम्बन्ध जीवनकी कठोर वास्तविकतासे है: लेखकोंके खूनसे लिखी हुई रचनाओंको कौडीके मोल खरीदनेवाले प्रकाशकोंसे है। निरालाजीके साथ जो व्यवहार किया गया है, वह लेखकोंके शोषणकी जीती-जागती मिसाल है। औरोंके साथ भी प्रकाशक ऐसे ही व्यवहार करते है यह उनका दस्तूर है। उनके लिये कविता, साहित्य, समाज-सेवा कोई माने नही रखते, उनका देवता है पैसा। पैसेके लिये वे साहित्य लिखाते और बेचते है मुनाफेका पन्द्रह आना वे अपनी जेबमें रखते हैं, एक आना लेखकको देकर हिन्दी साहित्यका उद्धार करते हैं।

एक बार सहानुभूति रखनेवाले एक प्रकाशकने कहा "निरालाजी बेकार मारे मारे फिरते है। हमने उनसे कहा था, पचास रुपया महीना हमसे लीजिये और गॉवमे जाकर रहिये, जो लिखिये, हमें भेज दीजिये, हम उसे छाप देंगे।" सहृदय प्रकाशककी समझमें कभी यह बात नहीं आयी कि कोई भी लेखक यो पचास रुपये माहवार पर नहीं बिक सकता, फिर गॉवमें नजरबन्दी ऊपर से।

प्रकाशकोंने निरालाजीके बारेमें एक अफवाह जोरोंसे फैला रखी है कि उन्हे हजार दो हजार रुपये महीने भी मिलें, तो भी उनकी यही हालत रहेगी। नतीजा यह कि उन्हे जितना कम दिया जाता है, वही बहुत है! इस तर्कसे जरा सावधान रहना चाहिये और यह पता लगाना चाहिये कि एक किताबसे प्रकाशकने खुद कितना कमाया है और उससे लेखकको कितना दिया है। आप किसी अच्छे प्रकाशकके व्यक्तिगत या घरेलू खर्चका हिसाब लगाकर देखिये तो पता चलेगा कि निरालाजीका खर्च उससे कहीं ज्यादा कम है। एक किताबका कापीराइट खरीद कर प्रकाशक चाहता है कि उसके दिये हुए मूल्यसे लेखक छ महीने खाता रहे। लेकिन यह रकम उसके अपने खर्चके लिये महीने भरको भी पूरी नहीं पडती। उसका खर्च पूरा पड़ता है निरालाजी और उन जैसोंकी कमाईसे बेजा मुनाफा कमा कर।

प्रकाशकोने एक दूसरी अफवाह भी फैला रखी है -निरालाजी तो अकेले मस्त आदमी हैं किसीको धेला देना नहीं, जो मिलता है अपने ऊपर खर्च कर देते हैं। लेकिन प्रकाशकोकी तरह निरालाजीके भी एक परिवार है। लड़कपनमे ही पिता, चाचा, पत्नी आदिका स्वर्गवास होनेके बाद छोटे-छोटे भतीजो और अपनी शिशु-कन्या और पुत्रका भार उन्हींके ऊपर पडा। कलकत्तेमे पैसा मिलनेपर वे तुरन्त घर भेजते थे। उस जमानेकी मनी-आर्डरकी रसीदें प्रकाशकोकी अफवाहको उड़ा देनेके लिये काफी हैं। कभी-कभी वे अपने भतीजोको अपनी संपत्ति—यहॉ तक कि बर्तन-भॉडे भी बेच डालनेके लिये भी लिख देते थे। उनकी कन्या सरोजका धनाभावसे ठीक इलाज न हो सका था। उन दिनो वे बहुत ही व्यथित रहा करते थे, लेकिन उन्हे परिवारका ख्याल नही है, यह कहानी तब भी बराबर सुनायी पडती थी। वर्तमान आर्थिक सकटके दिनोमे उन्होने परिवार ही नहीं, अन्य सार्वजनिक सहायताके कामोके लिये भी बराबर पैसा दिया है। पैसेका अभाव रहते हुए भी उन्हे उसका मोह कभी नहीं रहा। किसीको जाडे-पालेमे ठिठुरते देखकर वे कोट या कबल उतारकर दे देते है, तो लोग इसे गैरजिम्मेदारी कहकर, खुद अपनी जिम्मेदारीसे बरी हो जाते है।

दो साल पहले जब पत्रोमे निरालाजीके आर्थिक सकटकी चर्चा हुई थी, तब उन्होने कहा था, "मै न्याय चाहता हूँ अपनी आवश्यकताके लिये मैने काफी लिखा है। मे दयाकी भीख नहीं चाहता।" जब उनकी पुस्तकोके कापीराइटकी बात चलायी गयी थी, तब उन्होने लिखा था, "कापीराइट जातिका है, उसका धन उसीके कामोमे लगना चाहिये।"

यह याद रखना चाहिये कि निरालाजीने जितना पैसा अपनी इच्छाओकी पूर्तिके लिये खर्च किया होगा, उसका हजार गुना वे अकाल-पीडितो और दूसरे दीन-निर्धनोपर खर्च कर चुके है और यह सब अपनी गाढी कमाईसे, उनके लिये मुनाफेखोरीका रास्ता नहीं खुला था।

एक बात ध्यान देने की है कि कोई एक ही प्रकाशक बराबर उनकी पुस्तकोका खरीददार नहीं रहा। 'हिन्दी-बंगला-शिक्षा' के प्रकाशक 'बेरी एण्ड कंपनी' से लेकर 'अणिमा' के प्रकाशक 'युग-मन्दिर' तक हिन्दीके अनेक छोटे-बडे प्रकाशकोने उनकी किताबे खरीदी है। इसका एक कारण यह है कि उनके साथ प्रकाशकोका व्यवहार कभी सतोषप्रद नहीं रहा, इसलिये उन्हे बराबर एकके बाद दूसरी दूकान आजमानी पडी। हालॉकि हर जगह उन्हे एक ही रग दिखाई दिया। साहित्यमे उनका प्रवेश भी प्रकाशको और सपादकोके कारण रुका रहा। उनका पहला लेख सन् '१९ की सरस्वतीमे प्रकाशित हुआ था, लेकिन चार साल तक, जब तक "मतवाला" नहीं निकला, वे अपने वास्तविक कवि-रूपमे जनताके सामने नहीं आ सके। कलकत्तेसे एक छोटा सा संग्रह निकला 'अनामिका'; लेकिन कविताऐ उन्होने इससे बहुत ज़्यादा लिखी थी। उनका

पहला अच्छा कविता-संग्रह—जब वे कवि-रूपमें खूब प्रसिद्ध हो चुके थे—सन् '२९ में 'परिमल' नाम से निकला। कहाँ सन् '१९ कहाँ सन् '२९! हिन्दी कविताकी प्रगतिको यो रोक रखनेका श्रेय हमारे पूँजीवादी प्रकाशनको है।

निरालाजी कवि सबसे पहले हैं बादको और कुछ। लेकिन प्रकाशकोंने उन्हें हमेशा कविताएँ लिखनेसे निरुत्साहित किया। अपनी पत्रिकामे कविताएँ छापते, तो यह भी बता देते कि इस कारण पत्रिकाका "सेल" घट रहा है! उस पर से दावा उन्होंने यह किया है, हमने निरालाको महाकवि बनाया है!—जैसे उन्होंने प्रेमचन्दको उपन्यास-सम्राट् बना दिया था!

निरालाजी अनेक वर्षोंके परिश्रमसे-"बाजार" का और काम करते हुए—एक संग्रहके लिये कविताएँ लिखते हैं। इनके कापीराइटसे उन्हे उतना रुपया भी नहीं मिला जितना किसी कालेजका अध्यापक कापियाँ देखकर पन्द्रह दिनमें कमा लेता है! उन्होंने अपने कविको जीवित रखा है, इस प्रतिकूल परिस्थितिका विरोध करके, अपनी कला और जनतासे सच्चे प्रेमके कारण!

" देवी " कहानीमे निरालाजीने लिखा है, किस तरह कामशास्त्र पर पुस्तके लिखकर, भारतीय संस्कृतिकी दुहाई देनेवाले लोग उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। उन्होने कभी इस तरह कलाको नीचे गिरा कर पैसा कमानेकी कोशिश नही की। लेकिन प्रकाशक ज़्यादातर यही चाहते हैं। निरालाजीको अपने साहित्यके प्रकाशनके लिये कदम-कदम पर लड़ना पड़ा है। पुस्तके ही नहीं, पत्रिकाओंमें कविताएँ और लेख छपानेमें भी उन्हें प्रकाशकोकी व्यक्तिगत या वर्गगत रुचिसे लोहा लेना पड़ा है। भला कौन विश्वास कर सकता है कि अभी दस-बारह साल पहले उन्हें श्री सुमित्रानन्दन पंत और स्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर अपने लेख नष्ट कर डालने पड़े होंगे? ये सुन्दर लेख इसलिये नष्ट किये गये कि जिसके लिये लिखे गये थे, उन्हे वे स्वीकार न थे।

हिंदीके प्रकाशक साहित्यके मामलोमें अपनेको साहित्यकारसे ऊँचा ही समझते हैं। इन लोगोने निरालाजीके साहित्य पर ऊँच-नीच कहनेकी भी हिम्मत की है। ऐसे ही एक सज्जनको निरालाजीने एक पत्रमे लिखा था, " गीत अगर आपको पसन्द नहीं, तो इसके ये मानी नहीं कि हिन्दीमें सुलभ हैं।"

निरालाजीने कई पत्रिकाओमें सम्पादकीय और दूसरी तरहके नोट लिखे हैं, लेकिन उनका श्रेय लिया है उन प्रकाशकोंने, जो पूँजीके बल पर सम्पादक भी बन गये थे!

ऐसे ही एक प्रकाशक-सम्पादकसे उनका पत्र-व्यवहार देखिये। निरालाजी पर मुकदमा चल रहा है। रुपया जमा करना जरूरी है। २'१) नहीं तो १०) से भी काम चलानेकी बात वह कहते हैं। लेकिन उन्हें महाकवि बनानेवाले प्रकाशकजी "अर्थ-कष्ट" के कारण १०) भी नहीं दे सकते!

निरालाजीका पत्र —

" प्रिय .. ....

कल घर जाना चाहता हूँ। किश्त समझना है। अभी अदालतकी नकल नहीं ली। सभव हुआ—अगर आपसे २५) मिले तो किश्त दे दूँगा, नहीं तो घूम फिर कर होली बाद चला आऊँगा। यदि २५) नहीं तो १०) दीजियेगा।

इति।

निराला"

प्रकाशकजी का उत्तर —

" किश्ते आप २५ एप्रिलसे देना शुरू करें। २५ एप्रिल तक बड़ा अर्थ-कष्ट रहेगा। इधर मैंने काम भी कम किया।"

यो दस-दस रुपयोंके लिये हमारे बड़े-बड़े कलाकारोंको मोहताज बना दिया है, इन दो-दो कौड़ीके प्रकाशकोंने!

रायल्टी और कापीराइटमें जो ठग-विद्या चलती है, उसे हिन्दीके लेखक अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन इस ठगीसे भी ज़्यादा निरालाजीको चोट पहुँचायी है, प्रकाशकोंके व्यवहारने! ये बुकसेलर जो कल निराला जैसोंके सपर्कके कारण ही याद किये जायेंगे, उनसे ऐसा व्यवहार करते रहे, जैसे हिन्दी साहित्यके भाग्य-निर्माता यही रहे हों। जिन लोगोंने जीविकाके दूसरे साधन रहते हुए साहित्य-सेवाकी है, इस व्यवहारको समझ नहीं सकते। जो लेखक केवल अपनी कलमके भरोसे जीता है, वह जानता है, प्रकाशक उसकी लाचारीसे कैसे फायदा उठाता है। प्रकाशकके रेट बँधे हुए हैं! काम करना हो तो करो, नहीं तो दूसरी दूकान देखो। काम करने पर भी वह हमेशा जताता रहता है कि वह मालिक है, लेखक उसका नौकर है। " सफलता " कहानीमें निरालाजीने अपने अनुभवसे ऐसे ही प्रकाशकोंका चित्र खींचा है।

उनके एक गीतकी पंक्ति है—" लाञ्छना-ईन्धन हृदयतल जले अनल "—उनके हृदय मे यह अपमानकी आग जलानेका श्रेय हिन्दीके स्वार्थी प्रकाशकोंको है। उन्होंने लेखकोंकी कमाई ही नहीं हड़प ली उनके आत्म-सम्मानको अपने पैरोंतले रौंदा है। जब तक यह पूँजीवादी प्रकाशनकी व्यवस्था नहीं बदलती तब तक हमारे लेखक इसी तरह लाञ्छित और अपमानित होते रहेंगे।

★

'रूपाभ' और निराला जी

नरेन्द्र शर्मा

जुलाई १९३८ में 'रूपाभ' के प्रकाशनका महत्त्व मेरी दृष्टिमें दो प्रकार है।

एक तो, 'रूपाभ' के सम्पादकका दायित्त्व ग्रहण करके श्री सुमित्रानन्दन पन्त अपनी नयी काव्य-धाराके अनुरूप ही सूक्ष्म अनुभूतियों और अशरीर विचारोंकी दुनियासे बाहर निकलकर मानसिक इच्छाकाक्षाओंको क्रियात्मक रूप देने लगे। 'रूपाभ' का नामकरण करके उन्होंने अपनी विचार-धाराका स्पष्टीकरण किया — रूप ही है आभा जिसकी -यह कहकर उन्होंने विचारोंको क्रियात्मक रूपमें, आदर्शोंको सस्था रूपमें, और सौंदर्यानुभूतियोंको सुन्दर वस्तु-जगतमें परिणत करनेकी आवश्यकता की ओर सकेत किया। 'युगवाणी' में सगृहीत रचनाऍ, पंत जी की नयी विचार धारा और नयी काव्य-धाराका परिचय दे रही थी। जो सूक्ष्म है, वह रूप ग्रहण करे, मानसिक-सौंदर्य वस्तु-जगतके सौंदर्यका ही दूसरा पहलू हो, अर्थात जो है और होना चाहिये उसमें व्यवधान न रहे, स्वप्न सत्य हो। 'रूपाभ' का प्रकाशन और व्यवहारी काम-काजी दुनियाके कार्य-कलापसे दूर रहनेवाले श्री सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा उसका सम्पादन इस दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

दूसरी, एक और महत्त्वकी बात 'रूपाभ' के प्रकाशनसे सम्बद्ध है। 'रूपाभ' को सहज ही सब प्रगतिशील साहित्यिकोंका सहयोग प्राप्त हुआ और उसमें अग्रणी रहे पं० सूर्य्यकान्त त्रिपाठी निराला। निराला जी के निरालापनसे रॅगी हुई बलिष्ठ और समर्थ हाथसे निकली हुई सामाजिक वास्तविकता पर आधारित कई गद्य रचनाऍ 'रूपाभ' में प्रकाशित हुई और उनपर घासलेटी प्रचारका समुचित उत्तर 'रूपाभ' ने दिया-जैसे सम्पूर्ण प्रगतिशील लेखक-समुदायने घासलेटकी लचर दलीलकी धज्जियॉ उडादी।

'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'चमेली' (यह उपन्यास अभी भी अपूर्ण ही है)-इन गद्य रचनाओंमें भाषा, शैली, रचना-सौष्ठव तथा सामाजिक-यथार्थताकी ऊँचीसे ऊँची सतह पर निरालाजी पहुँचे हैं। प्रगतिकी जिन ऊँचाइयों पर साहित्य अपने सहस्र पदोंसे बढ रहा था, उनकी झलक-मात्र 'रूपाभ' दे सका था, किन्तु प्रगति-पथ पर स्वभाव, रुचि और विचारोंके वैचित्र्य तथा हार्दिक सहयोगका यह जीवित-जाग्रत प्रमाण सिद्ध हुआ। निरालाजीके सहयोगसे पंतजीके पत्रको निसदेह प्रतिष्ठा और सार्थकता मिली।

'रूपाभ' ने भी इस बातको समझा। डा० रामविलास शर्मा द्वारा लिखित और अक्तूबर १९३८ में प्रकाशित 'कवि निराला' शीर्षक लेख और एप्रिल १९३९ में प्रकाशित "अनामिकाके कविके प्रति" पंतजीकी कविता निरालाजी तथा उनके सहयोगके महत्वको आशिक-रूपसे प्रकट करनेका प्रयास करते हैं।

चमेली

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

१

उतरता बैसाख। खलिहानमें, गेहू, जव, चना, सरसो-मटर और अरहरकी रासे लगी हुई है। गॉवके लोग मडनी कर रहे है। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिनकी मददसे, माडी हुई रास ओसा रहे है। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाच का वक्त। सूरज इस दुनियासे मुँह फेरनेको है। एक जगह, घने आमके पेड़के नीचे, सब जगहोसे ज्यादा लॉक रक्खी हैं,—एक रास भी माडी लगी हुई,—एक अच्छा पलॅग और एक चारपाई पर लट्ठ रक्खे सिपाही बख्तावर सिह थैलीसे तैयार किया रक्खा दोहरा निकाल रहा है, पलॅग पर पटवारी लाला शाहनाईलाल श्रीवास्तव, खेतोकी पैदावार लिख रहे हैं, बहुत कुछ अदाजन। देखने पर मालूम देता है, यह जमीदारका खलिहान है। जमीदारके खलिहानकी बगलमे पटवारीके खेतकी लाक लगी है। जमीदारने तीन बीघेका एक खेत पटवारीको दिया है। गाववाले जानते हैं—क्यो दिया है। फिर भी लाला शहनाईलाल सौ से ज्यादा दफे, जब गॉव आते है, रास्ता चलते गॉववालोको बुला कर कहते हैं—किसानोके अच्छे खेतसे बीघा पीछे दो रुपए ज्यादा लगान उनके खेत पर लगाया गया है—पुलिस और जमीदार अपने बापको भी नहीं छोडते। लाला शहनाईलाल पैदावार लिखते हुए रह-रह कर अपने खेत की लॉक देख लेते है, सतोपकी सॉस छोड कर फिर लिखने लगते हैं। सुखलाल अपने गधेसे समझौते की बातचीत करता हुआ बगलके गलियारेसे निकल गया। पुरवाकी अदालतसे लौटनेवाले लोग कंधे पर अधारी डाले, एकके बाद दूसरे, चले गए, गंभीर भाव से कुछ मनन करते हुए। लॉककी तरफ लपकते हुए भैसेको भीखू चमारका नाती खेद ले गया। सूरज डूबनेको है। किरने ठंडी हो आई है। आमकी डाल पर कोयल बोली। उठ कर चमेलीने उस तरफ देखा। कोयल न देख पड़ी। लदे आमो की कतार दिखी। देख कर, जैसे बडे प्यारकी चीज हो, कुछ देर तक अनमनी सी होकर, औगी उठाकर फिर बैल हॉकने लगी। शरमा कर सर झुका लिया, जैसे सर उठाते वक्त सीना कुछ ज्यादा उठ गया हो। बख्तावर सिह देख रहा था, ऑखोमे जैसे मजबूत इरादा लिए हुए। पासके मडनी वाले कोई-कोई चले गए है, दूसरे कामो से, पटवारी शहनाई लाल भी चलने वाले है। जमीदारके गोड़इतसे घोड़िया कसवा रहे है। गॉव डेढ़ मील दूर है। रातको नदी नालेसे होकर गुजरते डरते हैं। सिपाही खलिहान के अहातेके बाहर तक छोड आनेके लिए लट्ठ सॅभाल कर बैठा। इसी समय लाला

बनिया कंधे पर दोहर रक्खे खलिहानमें आए और चमेलीकी रास देख कर मुस्कराते हुए पूछा, 'यह रास कब ओसाई जायगी ?' फिर आप ही उसके ओसाए जानेका दिन सोच कर दूसरी रासकी ओर बढे। पटवारीको देखकर राम-राम किया। पटवारी घोड़िया पर जा रहे थे, साथ जमीदारका सिपाही। चमेली उसी तरह गर्दन झुकाए ऑगी लिए बैलोंको चलाती गई। सिपाही पटवारीको छोड़ कर लौटा। सूरज डूब चुका है। दूर गॉव के दूसरी तरफ आसमान पर ढोरोकी खुरीकी धूल दिखाई दी। खलिहान कुछ सुनसान है। कुछ दूर एक मडनी चल रही है, पर किसीकी धीमी आवाज वहॉ तक नहीं पहुँच सकती। चमेलीके नजदीकके लोग दिन रहते-रहते बैलोंको बॉध कर चारा-पानी कर आनेके इरादे गॉव गए हुए है—मुँह ॲधेरे तक आ जायँगे ताकनेके लिए—तब तक दूसरी मडनीवाले लॉक और रास देखे रहेंगे—वे सब अकेले आदमी है। कोई लडका या लडकी किसीके घर है तो वह ढोर चराने गई है। घरवाली शाम तक भोजन पका रखती है, और सबेरेका पकाया हुआ रक्खा है तो गृहस्थीका दूसरा काम करती है, जैसे कभी सीला बीनती रही या बगीचेके आम ताकती रही जो कुछ रुपए-धेलीका हिस्सा लिया गया है, या बैलोंके चारा-पानीका इंतजाम करती रही कि दिन भरके चले थके बैल आएँगे, उनके आगे रक्खेगी।

बख्तावर सिह चमेलीके पास आकर खडा हुआ और एक दफा इधर-उधर देखा जैसे सब की रक्षा कर रहा हो। फिर लाठीका गूला रासकी बगलमे दे मारा, और खॅखॉर कर पूछा—'तेरा बाप कहॉ है, चमेली ?'

हाथकी औगी धीरेसे बैलकी पीठ पर मार कर निगाह बैलोमें गडाए हुए चमेली ने कहा—'लकड़ी काटने गया है।'

'लकड़ी काटने ?' बख्तावरने हमदर्दीमे तअज्जुब करते हुए कहा।

'हा,' बेमन चमेलीने जवाब दिया।

'लादता है क्या ?'

'नहीं,'

'फिर ?'

'मजूरी करता है।'

'मजूरी करता है और इतना चल कर ? हम कई मर्तबे कह चुके कि तू हमे दूसरा न समझ, हमसे जहा तक होगा, हम तैयार हैं। वह खरीदे तो तू उसे समझा, गॉवके दस-पॉच बबूल हम दिलवादें आसामियोंके, नहीं तो रुपया हम अपनी गॉठसे देंगे, और वह चाहे तो लौट कर, माल बेच कर रुपया चुका सकता है; यह मजूरी छूट जायगी। हॉ, गाड़ीका किराया न देना होगा—हम सरकारी गाडी दे देंगे।' बख्तावर सिह धन्नासेठी निगाहसे चमेलीको देखकर मुस्कराया।

इस कहनेका कोई जवाब हो सकता है, चमेलीकी समझमें न आया। वह

चुपचाप बैल हाँकती गई। एक-एक दफे गलियारेकी तरफ देखती थी, कि उसका बाप आरहा है या नहीं।

वख्तावर सिहने इधर-उधर फिर देखा और अपनी लाठीका गला रास पर रक्खा। बैलोके साथ चमेलीके घूम कर आते ही कहा—'चमेली, तीसरी दफे कह रहा हूँ।'

चमेली कुछ न बोली। बैलोके साथ चक्कर घूमती हुई चली गई। वख्तावर वैसे ही खड़ा रहा। चमेलीका मौन उसे बडा सुहावना मालूम दिया।

चमेली वैसी ही शात, बैलोके साथ फिर आई। अबके ठाकुरसे न रहा गया। वढकर चमेली का हाथ पकड लिया।

'महादेव भैया रे,—ओ महादेव भैया!' चमेलीने आवाज दी। पहले देख चुकी थी कि महादेव मडनी कर रहा है। कुछ दूर था।

'क्या है?' महादेवने मददके गलेसे पूछा।

'जल्दी आ', चमेली जैसे अपनी जवान पर ही उसे ले आई।

महादेव जल्दी से वढा। चमेलीकी पुकार पर ही ठाकुर भगे।

महादेव जब चमेलीके पास आया, तव ठाकुर चिल्लाने लगे—'दौडो गॉववालो, महादेवना चमेलीकी रासमे क्या कर रहा है।'

ठाकुरकी आवाज वुलंद थी। गॉवकी दीवारोसे टकराई। गॉव और वाहरके लोगोने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेवको ठाकुरकी आवाजसे ही चमेलीके साथ वाली हरकत मालूम हो गई।

'घवरा न', चमेलीसे कह कर महादेव ठाकुरकी तरफ वढा।

ठाकुर लाठी लिए तैयार थे ही। महादेवके हाथमे सिर्फ औंगी थी। लेकिन यह पठ्ठा था और लडता था। ठाकुरके देहमे सिर्फ दाढी और मूछोके वाल थे और हाथ मे एक तेलवाई लाठी।

महादेवके आते ही ठाकुरने वार किया। महादेव वारके साथ भीतर घुसा और कमर पकड कर उठा कर ठाकुरको दे मारा। इसके वाद ठाकुरकी वुरी हालत थी। कई जगह चोट आई।

अव तक गॉवके लोग पहुँच गए। मनराखनने ठाकुर पर महादेवको देखते हुए पूछा—'क्या हुआ?'

सीतलदीन मनराखनके वाद पहुँचे और महादेव और ठाकुरको देख कर ताअज्जुवमें आ मनराखनसे पूछने लगे—'क्या है?'

माधो सुकुल पहुँचनेवाले तीसरे थे। देख कर सीतलदीन और मनराखनसे कहा—'इन्हें छुडाना चाहिए।'

वदलू कुम्हार पहुँचे। देख कर वोले—'जव मालिकोंका यह हाल है तव हमारा कैसा होगा!' और ताअज्जुवमे भरे हुए दु खमे वहीं डूव कर रह गए।

महादेवने अब तक खूब भर कर मार लिया था। रद्दे पर रद्दे और घूँसे पर घूँसे चलाए थे। मार कर गालियाँ देता हुआ, छोड कर अपनी मड़नीकी तरफ चला। गालियोंमें ही लोगोंको समझा दिया कि माजरा क्या था।

चमेली अपनी जगह खडी थी। बैलोंको खडा कर दिया था। वहींसे देख रही थी।

. महादेवके चले जाने पर, सर झुकाए, हमदर्दीसे ठाकुर बख्तावर सिंहको पकड कर गाँववाले अपने अपने अँगोछेसे उनकी गर्द झाड़ते रहे, और जो कुछ कहा, वह महादेवको तरफदारीमें बिलकुल न था, फिर भी ठाकुर नाराज थे कि वक्त पर नहीं छुडाया। बैठे हुए फटी निगाहसे इधर-उधर देखते रहे। गर्द झाड कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होशमें आए, होश आने पर जोश आया बोले—'हम बचाते थे, सोचते थे कि कौन हाथ छोडे—कौन हाथ छोडे, लेकिन साले सूद्रने अपमान कर ही तो दिया। अच्छा, देख लिया जायगा, ठकुराइनने दूध पिलाया है, तो—'

'तुम्हारी उसकी कोई जोड है, मालिक?' सीतलने ठाकुरको ठंडा करते हुए कहा, 'सेर और रयारकी बरनी!'

ठाकुर कुछ और जोशमें आए। बोले—'अब तुम्हीं लोग देखोगे। और यह जो छोलहट चमेलिया है, . खैर, देखा जायगा।'

लोग चमेलीके नामसे सन्न हो गए। ठाकुरकी ही बात सही मालूम दी। सब लोग एक दूसरेको देखते रहे।

बात अब तक गाँवके चारों ओर फैल गई। चमेलीका बाप दुखिया लकडी काट कर गाँवके किनारे आया कि सुना, 'खलिहानमें आफत मची है चमेलीके बारेमें, ठाकुर बख्तावर सिंहको मारा है महादेवने, ठाकुर पहले चिल्लाए थे कि रासमें महादेव और चमेलिया—'

एक दूसरे ने कहा—'मुँह अँधेरा था, अरे हाँ, कौन कहे, उतनी बडी बिटिया।'

दुखिया सूख गया। सीधे खलिहान पहुँचा। मालिकोंके खलिहानके पास लोग इकट्ठे थे। वहीं गया। लोगोंको जमीदारकी तरफदारी करते देखा, गाँवमें भी जैसा सुना था, वह चमेलीके खिलाफ था, मारे डरके काँपते हुए दुखियाने, सर पर बँधा अँगोछा उतार कर टोपी जैसे ठाकुरके पैरोंपर रख दिया, और हाथ जोड कर बोला—'मालिक, मेरा कोई कसूर नहीं है, दुखी रियाया हूँ, किसी तरह जीता हूँ। तुम्हारी जूठी रोटी तोड़ कर, मुझ पर नेक निगाह रक्खो, मर जाऊँगा नहीं तो, कहींका न रहूँगा।'

गर्म साँस छोड़ कर बख्तावर बोले—'तेरी वह जुवंटा बिटिया भी समझती है, देसके धिंगरोंको बुलानेके लिए रख छोडा है उसे घरमें? भर्तारको तो चबा गई ब्याह होते ही, इससे नहीं समझमें आया कि कैसी है? बैठा क्यों नहीं दिया किसीके नीचे अब तक?'

लोगोंने दुखीको पकड़ कर कहा—'तुम अभी जाओ। ठाकुरकी तबियत ठीक नहीं है। बोलते हैं तो दम फूलता है।'

दुखी अपने खलिहान गया। चमेली बैलोको खड़ा किए चुपचाप खड़ी थी। यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरतमें उसकी निगाहके सामने आई थी। इस दुनियाको वह सच समझती थी, इसके लोगोंको सही भावोंसे उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था, बदलेमे वैसे ही भाव जैसे पाती आ रही थी, पर आज कैसा छल है। महादेवको वह भैया कहती थी, पर कोई आज माननेके लिए तैयार नहीं!

चमेलीको देखते ही दुखी ने कहा—'क्यो री, नाक काट ली न तू ने?'

'अँधेरेमे तुझे अपनी नाक न देख पडे तो मेरा क्या कसूर है?' चमेलीने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा-'अरी, जमीन पर पैर रख कर चल!'

'तो तू क्या देखता है, किसीके सर पर पैर रख कर चलती हूँ जमीदारके सिपाहीकी तरह?'

दुखी डरा। फिर जमीदारके प्रतापका सहारा लेकर बोला—'अरी, आंखमें माड़ा न छाए—कुछ देख।'

'मैं खूब देखती हूँ। माड़ा छाया है लोगोंकी आखोमे और तेरी भी।' चमेली बदल कर खडी हुई, दूसरी तरफ मुँह करके।

दुखी उस सचाईके सामने अपने आप दबा। फिर उसने गिरते सुरमे पूछा—'फिर बात क्या हुई, बता। लोग क्या कहते है।'

'लोग कहते हे अपना सर। लोग उसी ठकुरवाकी ठकुरसुहाती कहते है। बात यह हुई कि ठाकुर मुझसे कहता था कि तेरा बाप, मजूरी क्यो करता है, हम बबूल दिला देंगे, दाम नहीं तो अपने पाससे देंगे, मालिकोकी गाड़ी देंगे, काट कर कंपूसे बेच लाए, दाम फिर लकडी बेच कर दे।'

'तो फिर? मालिक और कैसे रियाया पर दया करे?'

'तेरा सर करे,' चमेलीकी माने पीछेसे कहा।

चमेलीकी मा पासके दूसरे गाँव न्योते गई थी। महादेवको सूझा, ठाकुरको मार कर उस गाँव सीधे पहुँचा। महादेवकी माँ भी वहीं थी। चमेलीकी माँ कहते ही वहाँ से चल दी, और ठाकुरकी सरासर शरारत है समझी, क्योंकि चमेली ठाकुरकी पहले की दो दफेकी छेड़ मासे कह चुकी थी।

तावमे भरी चमेलीकी मा चमेलीको 'आ, री' कह कर साथ लेकर, घर चली गई। दुखी दीन-भावसे अपने बैलोके मुस्के खोल कर वहीं बैलोको बाँधने लगा।

ठाकुरके पास गाँवकी करारी भीड़ जमा हुई। चौकीदार पसट्टू पासी रपोट कर देनेके लिए कई मर्तबे कह चुका, और समझा दिया कि गाँवके सब लोग जानते हैं,

गवाही देंगे, थानेदार साहबके आने भरकी देर है, मारे जूतोंके, महादेवके सरके बाल उड़ा दिए जायँगे, सजा तो बादको होगी ही, गॉवके लोग पूरे उत्साहसे साथ देनेको कहने लगे, कसमें खा-खा कर कि 'जैसा देखा है वैसा न कहें तो अपने बापके नहीं, नास हो जाय, खाट सीधे गंगाजी जाय।'

कुछ देरमें जमीदार साहब आए। ठाकुर जमीदार साहबके भैयाचार थे। सूद्रने पीट लिया, सबसे बडी चिता उन्हें यह थी। रिपोर्ट कर आनेके लिए चौकीदारसे कह कर ठाकुरको चारपाई पर गॉव उठावा लाए, और रातो-रात कुल बातें मालूम कर मामले को मजबूत करनेकी तरकीबे सोचने लगे।

२

इसी गॉवमे एक पंडितजी रहते हैं। नाम शिवदत्तराम त्रिपाठी। उम्र पचपनके उधर। पेशा अदालत झूठ तमस्सुख लिखना–लिखवाना, मुकद्मा लड़ना-लड़वाना, किसानोको अधिक सूद पर रुपया कर्ज देकर ब्याजमे खाना-रहना। गॉवके समाजके एक मुखिया (सरकारी नहीं)। अपनी भी काफी जमीन करली है, दूसरे-दूसरे गॉवोमे हिस्सा लेकर। लड़का लखनऊमें पढता है। घरके तीन भाई हैं। ये सबसे बड़े हैं। इनसे छोटे नहीं रहे। ननकी बेवा हैं, लावारिस। यही मकानकी मालकिन हैं। पं. शिवदत्तरामकी धर्मपत्नी नहीं हैं। बेवा भैहू मकानमें थी, उन्हे दोबारा ब्याह करनेकी जरूरत नहीं हुई। लड़का समझदार हें, इसलिए चचासे और बापसे कम पटती है। पंडिजीके छोटे भाई अपनी स्त्री और बच्चोको लेकर कानपुर रहते है। घरमें एक बेवा बहन भी है। दो लड़किया थी जो ससुराल हैं।

पं. शिवदत्तरामका कहना है, सुबह सोकर उठनेके बाद जब तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो। गॉववाले जानते है। फिर भी शिवदत्तरामकी आमदनीमें रुकावट नहीं पडी। कोई न कोई हाजिर हो जाता है।

सुबहका वक्त है। शिवदत्तराम नहा कर पूजा कर रहे हैं। कुशासनी पर बैठे है रामनामी ओढे। मस्तक पर चंदन, घोटी सॅवारकर बॉधी हुई। गंभीर मुद्रा, सामने ठाकुरजी। चंदन और फूल चढाए हुए, ताबेके बर्तनमे पानी दॉई ओर रक्खा। सपटीसे कभी कभी मुँहमे छोड़ लेते हैं। माला लिए हुए जप रहे हैं।

जगह, उन्हींकी चौपाल, काठके नक्काशीदार खंभोकी, पुरानी चाल वाली। तिसाही दरवाजा वैसा ही नक्काशीदार। बाहरसे देखने पर एक दफा निगाह रुक जाती है। पक्का मकान, बड़ा सहन, तीन चार नीमके पेड, पक्का कुआ।

लतखोरेके एक बगल चौपालमें पं शिवदत्तरामजी जप रहे हैं, दूसरी बगल लड़का मनोहर बैठा उन्हें देख रहा है। इसी समय दुखिया आया। चौपाल पर चढ़ कर भक्ति भावसे माथा टेककर पंडितजी को प्रणाम किया। फिर उकई बैठ कर हाथ जोड़े हुए दीनताकी चितवनसे देखता रहा। पं. शिवदत्तरामजी और गंभीर हो गए।

कुछ देर बाद, सपटीसे पानी चीख कर बहुत ही ठंढे सुरोंमें पूछा—' कैसे आए, दुखी ?'

पूछनेके साथ हाथकी माला चलती गई। फिर होंठ भी हिलने लगे।

दुखीने कुछ कहनेसे पहले रीढ़ सीधी की, फिर एक तरफ़ गर्दन टेढ़ी करके टेंटसे रुई पत्तोंमें लपेटा एक रुपया निकाला और कुछ गंभीरतासे सामने रख कर वैसा ही दीन होकर बोला-'तिवारी भय्या, मै तो मरा अब।'

प्रसन्नताको दबाते हुए, दुखीसे हमदर्दी दिखानेके विचारसे कुएँके भीतरसे जैसे तिवारीजीने पूछा—' क्या हुआ, दुखी ?'

' बड़ी आफत है, भैया!'

मदद सी करते हुए तिवारीजीने पूछा—' बात तो बताओ, महतो! तुम तो बस...'

'पुलिसमें रपोट हुई है।'

'किस बात की ?'

'अब क्या कहूँ भैया!'

'पुलिसके आगे तो कहोगे ?'

' हाँ, पुलिसके आगे तो कहना ही होगा। तभी तो आया हूँ।'

'तो बताओ, क्या रपोट हुई है, और माजरा क्या है, और तुम्हारा क्या कहना है।'

'मेरा क्या कहना है, मालिक, मैं तो किसान आदमी, कहना तुम्हें है जो कुछ है।' दुखीने गर्दन उठा कर अपने मुख्तार-आमको जैसे देखा।

फटके से दरवाजा खोल कर मालकिनने डॉटा—'इन्हें कुछ नहीं कहना। चल यहाँसे, बड़ा आया।' फिर जेठकी तरफ मुँह करके पर्देके विचारसे कानके पासकी धोतीमें हाथ लगाती हुई अपनावसे बोलीं—'तुम्हे नहीं जाना वहाँ, जिमींदारका मामला है। इसकी बेटी चमेलियाको महदेवनाके साथ दोख लगा है। सिपाही बख्तावर सिंहने देखा था, महादेवनाने मारा है, जिमींदारने रपोट लिखवाई है; कल थानेदारकी अवाती है।' कहकर, बाहरी आदमी कोई देखता न हो, इस विचारसे सहनके इधर-उधर झाँकने लगी, फिर देहरी पर पैर चढाकर खड़ी हो गई।

पं० शिवदत्तराम जीने हाथ बढ़ाकर रुपया उठाया, और टेंटमें करके पुजापा समेटने लगे। पुत्र गंभीर भावसे देखता रहा।

'अच्छा, दुखी, अभी जाओ, अभी हमें काम है। दुपहरको बागमें मिलो, हमारे खलिहानमें, ये सब एकांतकी बातें हैं।' कहकर, पुजापा उठाकर पंडितजी घरके भीतर चले। चलते समय हिम्मत बँधाते हुए कहा—'घबराओ मत।'

घरके भीतर साथ-साथ उनकी भैहू भी गई। आँगनमें जाकर पंडित जीने स्नेहकी दृष्टिसे भैहूको देखते हुए कहा—'औरत का कलेजा बेबातकी बातमें दहलता है। अरे, वहाँ जैसा मौक़ा देखेंगे, कहेंगे। सूद्र है, घबराया है। इनसे ऐसे ही मौके पर रुपया मिलता

है। आती लच्छिमीको कोई लात मारता है? वहाँ दो बातोंमें तो इसे समझाएँगे। थानेदार आए हैं, तो एक रुपएसे पार है? जितना दूध होगा, निकलेगा। रुपए थानेदारको काटते नहीं? नहीं तो मामला कौन है, कोई घावपट्टी चढ गई? हाथापाईके मामलेमे थानेदारका कौनसा काम?—सीधे अदालत खुली है। इस लोधको भरोसा है कि हमारी तरफसे चार कहेंगे, और हमारा भी काम निकल रहा है। थानेदारसे कुछ खुल्लमखुल्ला बाते होती हैं? यह अदालत थोड़े ही कि जिमीदारके खिलाफ चढकर गवाही देनी पड़ेगी? रुख देखेंगे, लोधको समझा देंगे कि ऐसा हो। मुमकिन, लोधके भी अच्छे गवाह हों। मामला लड जायगा तो बाहरसे लड़ा देंगे। लेकिन यह कमजोर है।' पंडित जीने फिर स्नेहकी दृष्टिसे भैहू को देखा।

भैहू अपनी बेवकूफीके खयालसे लजाकर बोलीं—'ऐ, इतना कौन जानता था? हमने कहा, कहीं बैठे बैठाए एक बला गले न लगे! हमारे कोई दूसरा बैठा है?' फिर कुछ रोनी सूरत बनाकर उसी आवाजमें बोली—'कोखका लड़का होता तो कोई एक बात न कहता। तुम्हारा भी होता—' फिर गंभीर होकर बोली—'दीदी का सुभाव अच्छा न था, तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा, यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नहीं है. दीदी मायकेसे ही बिगड़ी थी। कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़े वाले बागमे।' शात होकर बोली—'एक दिन पहर भर रात बीते दीदी बाहर निकलीं। मैंने कहा—क्या है कि हफ्तेमें एक रात दो रात इस तरह दीदी अकेली बाहिर जाती है। वे निकलीं कि पीछेसे दबे पॉव मैं भी चली। ऐन वक्त पर पकड़ ही तो लिया। वह तो भगा; दीदी पैरों पड़ने लगी। आज तक मैंने नही कहा। देखो न, तुम्हारा जैसा मुँह थोड़े ही है? न बापको पड़ा है, न माँको, उसीका जैसा मुँह है। उजाली रात थी, मैंने अच्छी तरह देख लिया था उसे।'

इसी समय बहन बागसे आई। भैहू हँसकर दूसरी दालानकी तरफ चली।

पं० शिवदत्तराम भावमें डूबे हुए बोले—'बाग जल नहीं गया।'

बहनने सोचा, छींटा उनपर है। उनकी दालमे काला था, बोली—'बाग क्यो जले, जले घर, जहाँ रोज आग लगती है।'

भैहू बगुलिनकी तरह ननद पर टूटीं। दोनों हाथ फैलाकर बोली—'अरी रॉड अपना टेंटर नहीं देखती, दूसरेकी फूली देखती है? बहेतू कहींकी, सबेरेसे जब देखो धोती उठाए बाहर भगी, कभी बाग, कभी खेत, इनके घर, कभी उनके घर। यह सब बहाने हैं, मैं समझती नहीं?' जेठकी तरफ कनखॉ घूँघट काढकर देखती हुई—'कहे देती हूँ तुमसे, यह अब रहेंगी नहीं घर, खोटोया बिसातेसे इसकी आसनाई है, सीधे तुम्हारे मुखमें लगाऐंगी कालिख और होगी मुसलमानिन।' फिर धमाधम एक कोठरीको चलती हुई—'यह इतना बड़ा सीसा खोदैयाके यहासे आया है—रोज मुँह, देखती है।'

'सुनो, सुनो,' पं० शिवदत्तरामने बुलाया।

'क्या?' बदलकर भैहू बोलीं, देखती हुई कुछ नजर बचाकर।

घरकी बात घर ही मे रहने दो।' पं० शिवदत्तराम पूरे विश्वाससे बोले—'कोई कुछ करे, दोख नहीं, धर्म न छोडे।' फिर भैहूसे कहा—' जरा यहॉ तो आओ।'

कहकर बाहरकी दहलीजकी तरफ चले। पीछेसे भैहू चलीं गंभीर भावसे। दहलीजके एक सिरे पर खिड़की है या जनाना रास्ता, बाहर जानेको वही गए। वहाँ, दरवाजा कुछ खोलकर, खडे हो गए। भैहू जेठसे विश्वासकी ऑखे मिलाकर खड़ी होगई।

'सुनो,' पंडितजीने आदरसे कहा। भैहू एक कदम बढ़ कर बिलकुल सट कर जैसे खडी हुई। 'वह दवा जो तुम्हें दी थी, इसे भी पिला दो।' पंडितजीने शंका और लापरवाहीसे कहा।

'तुम निरे वह हो,' जेठकी छाती पर धक्का मार कर भैहूने कहा, 'बाम्हन ठाकुरों के यहॉ कोई बेवा वह दवा खिलाए रक्खी भी जाती है? वह गावदी होगा जो रक्खेगा। एक आधके हमल रह जाता है, लापरवाहीसे। यह वह सब कर चुकी है।' कह कर स्वस्तिकी सास छोड़ी।

'तो ठीक है, चलो,' पीठ पर हाथ रख कर थपकियॉ देते हुए जेठने कहा और लौट कर दरवाजेकी तरफ बढे। मनोहर न था।*

---

*'चमेली' नामक अप्रकाशित उपन्याससे; जिसकी एक विशेषता ठेठ हिंदुस्तानी भाषा है।

निराला

गिरिजा कुमार माथुर

तुम कालिदास, तुलसी, रवीन्द्र
के अमर चरण-चिन्हों पर रखकर चरण चले,
ओ महाकाय, रवि की अविलंब विमल गति से।
आजानु करों से घेर लिया
तुमने कविता का फुल्ल कमल,
पखुरियों पर निज गीतों के अंकन उतार
उन लम्बी किरन-उँगलियों से,
जिनके चलने की छाया मे
थीं डूब गई हो मूर्तिमान,
सब भाव-भंगिमाएँ रंगीन अजंता की।
प्राचीन तपोवन की सारी सुधियाँ उठतीं,
ऋषियोंकी कांतिमयी विराट-तन छायाएँ,
वे यज्ञ-धूम्र से मंथर उडते केश-पुंज
ऋजु-कुटिल लटे धूर्ज्जटी सदृश,
आवर्तित चौडे कंधों पर,

जो भार वहन करते थे युग-परिवर्तन का।
रक्ताभ नयन, पलकें विशाल,
रंजित ज्यों लाल गुलाबोंका हलका अंजन,
फैली थी जिनमें प्रज्ञाकी निरुपम प्रशांति,
तेजस अंतर की चेतनता,
विमलांग शरद् की गहन, गँभीरा झीलोंसी
सीमांतमयी, सीमाविहीन।
उस ध्यान-मग्न, वंकिम भ्रू रेखा-मंडल में,
राकेश बिम्बसे उदित हुए,
कितने दूरागत सपनोंके सुंदर रहस्य,
कितने अनादि सत्यादर्शों के
आदि महद्-सौंदर्य रूप।
विश्वानुभूति के जिन उजयाले घेरों में
नूतन विचार के धुंधले मंदे क्षितिज खुले,
खुल गये कल्पना के दिगन्त,
खिल गये हिम जमें भाषाके केसर-प्रान्तर।
गंगा-तट का वह पांडुवर्ण मंगल-प्रदेश,
सदियों पहिलेके मंत्रपूत रजकण जिसके
उस मिट्टीमें से उठी एक ज्योतिर्रेखा,
जो खिंची रही मुक्ताओं,फूलों, तारों तक।
जिसके रंगों मे रची हुई थी ग्राम-धूप,
खेतों की उजली विशद प्रभा,
जो रंग-भवन की आभाएँ अनुरंजित कर,
जन-जनके मनमें बनी क्रान्तिकी चिनगारी।
ओ शांति-दूत, युगके विद्रोही कलाकार,
तुम बढे रूढिगत भावों की प्राचीर तोड़,
भीषण अवरोधोंकी चट्टानोंके ऊपर,
निर्माण-पंथ बन गया धीर-पद-चिन्होंसे।
इन नई मुक्त सीमाओं पर निर्बाध बही,
युगकी पुंजित गति सी कविता की भगीरथी,
कर मंत्र-मुग्ध अनुसरण तुम्हारे चरणोंका।
कवि-सिन्धु, तुम्हारी स्वर डोरी का सम्बल ले
नव मानवता आगई क्रान्तिके सिंहद्वार,
निज काले कर्मोंसे था जो पंकिल समाज,
जिसके पापोंसे संतापित तुम रहे किन्तु
जिन क्रूर शक्तियों से तुम जूझे जीवन भर,
उन महलोंके दीपक अब बुझते जाते हैं,
गिरता है उस समाज का अब विक्षत खँडहर।
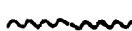
निराला की नवीन गतिविधि

प्रकाशचन्द्र गुप्त

छन्द बन्ध ध्रुव तोड़, फोड कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता-धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी नि सृत
— सुमित्रानन्दन पन्त

निराला हिन्दीके युगान्तरकारी कवि हैं। सदा ही उन्होंने संगीत, भाषा, भावो और साहित्यके समस्त रूप-प्रकारोंमें प्रयोग किये हैं। जब वे धूम्रकेतुके समान हिन्दीके साहित्याकाश पर उदय हुए, तबसे आजतक निरन्तर ही उन्होंने नयी दिशाओमें बढ़नेकी क्षमता दिखायी है। आपके काव्यका रथ कभी लीक पर नहीं चलता' उसे कँकरीली-पथरीली, ऊबड़-खाबड भूमि पर चलना ही प्रिय है। पन्त और निराला ने हिन्दी-काव्यको जो नवीन पथ सुझाया, वह छायावादके नामसे प्रसिद्ध हो चुका है। छायावाद हमारे राष्ट्रीय इतिहासके एक विशिष्ट युगसे सम्बन्धित है। इसके प्राणोंमें आकुलता है, करुणा है और वह रूप-राशि खोजनेकी उत्कण्ठा है, जो आजके भारत मे दुर्लभ है। छायावादमे भारतीय-राष्ट्रके प्राणका स्पन्दन अवश्य है, किन्तु इस काव्य में शक्तिकी अपेक्षा माधुरीका आग्रह था, और सघर्षकी अपेक्षा करुणाकी। कविका आदर्श शमाके समान घुल-घुल कर मिट जाना और आँसुओके समान बहकर विलीन हो जाना था। किन्तु निराला इसके विपरीत विद्रोह और शक्तिके कवि हैं। "मित्र के प्रति" आप कहते हैं —

"कहते हो," नीरस यह बन्द करो गान--
कहाँ छन्द, कहाँ भाव, कहाँ यहाँ प्राण ?
था सर प्राचीन सरस,
सारस-हंसोंसे हँस,
वारिज-वारिदमे बस रहा विवश प्यार;
जल-तरंग ध्वनि, कलकल
बजा तट-मृदंग सदल;
पैंगे भर पवन कुशल गाती मल्लार।
"सत्य, बन्धु, सत्य, वहाँ नहीं अर्र-बर्र;
नहीं वहाँ भेक, वहाँ नहीं टर्र-टर्र।
एक यहीं आठ पहर
बही पवन हहर-हहर,

तपा तपन, हहर-हहर, सजल कण उड़े;
गये सूख भरे ताल,
हुए रूख हरे शाल,
हाय रे, मयूर-व्याल पूँछ से जुड़े।"

इसी काव्य-क्रमका स्वाभाविक विकास "कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते" हैं। जो संगीत-माधुरी निरालाके छायावादी काव्यमें थी, आज वह लगभग विलीन हो चुकी है। कविने आज कठोर, क्रूर यथार्थका वरण किया है। स्वप्नोंका श्रृंगार उसे कभी वांछित नहीं था, किन्तु अब वह कुरूप जीवनका आलिंगन करनेसे भी नहीं हिचकिचाता। निरालाका नया काव्य धरतीके अधिक निकट है, यद्यपि कलाका श्रृंगार उसमें अपेक्षाकृत कम है और भाषा उनकी जनताके अधिक समीप है। "तोड़ती पत्थर" और "भिखारी" का विकास-क्रम निरालाके नये काव्यमें है। जो भाव-धारा हम कविके नये काव्य-रूपमें देखते हैं, उसका परिचय हम "कुल्ली भाट" और "बिल्लेसुर बकरिहा" आदि रचनाओंसे भी पाते हैं। सामाजिक अन्याय और अव्यवस्थाके प्रति कविने व्यंगके अस्त्रको तीखा किया है और उससे वह मर्म पर आघात करता है।

"कुकुरमुत्ता" को निरालाजीने दीन-हीन शोषित जनताका प्रतीक माना है, और गुलाबको शोषक अभिजात वर्गका। इस रूपकमें परम्परागत भाषा, संगीत, उपमाएँ, शब्द-चित्र, रस आदि सब विलीन हो गये हैं और एक नयी कलाका जन्म हुआ है। यह कला "कुकुरमुत्ता" के ही समान बंजर धरतीकी उपज है, उसमें रूप, गन्ध, रस आदिकी कमी है, वह भावोंको सुकुमारतासे नहीं गुदगुदाती, वह पाठकको सोचनेके लिए विवश करती है। "कुकुरमुत्ता" के समान उसकी एक सामाजिक उपादेयता है।

निरालाजीके चित्रोंमें अतिरञ्जना है, किन्तु मात्र-रूपकी उपेक्षा है और वास्तविकताका आग्रह है। कुकुरमुत्ता गुलाबसे कहता है :

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खादका तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनोंको तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम ...

नए विषय और भावोंके अनुरूप ही कविके काव्यका काया-कल्प हुआ है। उसकी नयी उपमाएँ और नये शब्द-चित्र मनको आकृष्ट नहीं करते; वे पाठकको चौंका देते हैं। उनमें विनोद है, चुटकी है, किन्तु सौन्दर्य नहीं। "खजोहरा" में कविने गाँवका चित्र नयी ही दृष्टिसे खींचा है; इस चित्रमें जैसे शूल-सा कुछ मनमें कसकता है :

कच्चे घर, ऊबड़-खाबड़ , गन्दे
गलियारे, बन्द पड़े कुछ धन्धे ।
लोग बैठे छोड़ते हैं जम्हाई,
चलती है ठंढी-ठंढी पुरवाई ।
निड़ाई जा चुकी है ख़रीफ़, नहीं
करनेको रहा कोई काम कहीं ।
बारिशसे बढ़ती ज्वार, बाजरा, उर्द,
गॉव हरे-भरे सब, कलॉ और खुर्द ।
रोज़ लोग रातको आल्हा गाते
ढोलकपर, अपना जी बहलाते ।
झूलती झूले, गाती हैं सावन
औरते— " नही आये मनभावन । "
मारते पेंगे लड़के बढ़-बढ़ कर,
घहरा रहा है भरा हुआ अम्बर ।

" खजोहरा " की उपमाएँ सौंदर्यवादियोको शायद ही पसन्द आवें । कविका हास इन रचनाओंमें फूटकर वहा है ।

इन नयी कविताओंमे कविकी दृष्टि सर्व-भेदिनी और सर्व-उपहासिनी बनी है । सभी रँगे सियारोका उसने मजाक बनाया है । " मास्को डायलाग्ज " में एक नकली सोशलिस्टका खाका कविने खीचा है

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिड़वानीजी
बहुत बड़े सोश्यलिस्ट,
" मास्को डायलाग्ज़ " लेकर आये हैं मिलने ।
बोले, ' यह देखिए, मास्को डायलाग्ज़ है,
श्री सुभाषचन्द्रने जेलमें मॅगायी थी,
भेंट की फिर मुझे जब थे पहाड़ पर ।
'३५ तक मुश्किलसे पिछड़े इस देशमे,
दो प्रतियॉ आई थीं "
फिर बोले, " वक्त नहीं मिलता,
बड़े भाई साहबका बॅगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ । '
फिर कहा, " मेरे समाज मे
बड़े-बड़े आदमी हैं,

एकसे हैं एक मूर्ख;
फाँसना है उन्हे मुझे;
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देनेका।
उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख लीजिए।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लूके पट्ठोंपर,
मनमाना रुपया फिर ले लूँ इन लोगोंसे।
खोल दूँ प्रेस एक नये किसी बंगलेमे,
आप भी वहीं चलें,
चैनकी बंसी बजे।
देखा उपन्यास मैंने,
श्री गणेश मे मिला —
'पृय असनेहमयी श्यामा मुझे प्रैम है।'
फिर उसे रख दिया,
देखा मास्को डायलाग़ज
देखा गिडवानीको।

"नये पत्ते" में कविने अनेक राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं। उसकी पैनी, मर्मवेधी दृष्टि, राजनीतिक दलोंकी चालोके पीछे क्या तथ्य है, यह अच्छी तरह पहचान लेती है। वह सामाजिक न्याय और गरीबीके अन्तकी माँग करता है :

धूहो और गुफाओ और पत्थरो के घरों से
आजकल के शहरो तक, दुनियाने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानोसे
दल और कारखानोसे।
रामराजके पहले के दिन आये।
बानिजके राजने लक्ष्मीको हर लिया।
टापूमे ले चलकर रखा और कैद किया।
एकका डंका बजा,
बहुतोकी आखें झपीं।
लहलही धरतीपर रेगिस्तान जैसा तपा।

जोतमे जल छिपा,
धोखा छिपा, छल छिपा।
बदले दिमाग बढे,
गोल बांधे, घेरे डाले,
अपना मतलब गाँठा,
फिर आँखे फेर ली।
जाल भी ऐसा चला
कि थोडोके पेटमे बहुतोंको आना पड़ा।

सन् '४६ मे जो देशमे क्रान्तिकारी आन्दोलन उठा और खूनकी होली हुई उसके प्रति कवि अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है। इस कविताके नायक सन् '४६ के विद्यार्थी हैं .

युवक जनोंकी है जान, खूनकी होली जो खेली।
पाया है लोगोमे मान, खूनकी होली जो खेली।
रग गये जैसे पलाश, कुसुम किंशुकके, सुहाये,
कोक-नदके पाये प्राण; खूनकी होली जो खेली।
निकले क्या कोंपल लाल, फागकी आग लगी है,
फ़ागुनकी टेढी तान, खूनकी होली जो खेली।

जिस प्रकार नकली सोश्यलिस्टोंको निरालाजीने आडे हाथो लिया है, उसी प्रकार नकली नेताओको भी। एक राष्ट्रीय नेताका व्यंग--चित्र देखिये .

"आजकल पण्डितजी देशमे बिराजते है।
माताजीको स्वज़ीरलैंडके अस्पताल,
तपेदिक़के इलाजके लिये छोडा है।
बड़े भारी नेता है।
कुइरीपुर गॉवमें व्याख्यान देनेको
आये है मोटर पर
लन्डनके ग्रेज्युएट,
एम. ए. और बैरिस्टर,
बडे बापके बेटे,
बीसियो भी पर्तोके अन्दर, खुले हुए।
एक-एक पर्त बडे-बड़े विलायती लोग।
देशकी बडी-बडी थातियॉ लिये हुए।
राजोंके बाजू पकड, बापकी बकालतसे;
कुर्सी रखनेवाले अनुलंघ्य विद्या से,

देशी जनोंके बीच;
लैंडी ज़मींदारोंको आँखों तले रक्खे हुए;
मिलोंके मुनाफे-खानेवालोंके अभिन्न मित्र;
देशके किसानों, मज़दूरोंके भी अपने सगे
विलायती राष्ट्रसे समझौतें के लिए।
गलेका चढ़ाव बोर्झुआज़ीका नहीं गया।
धाक, रूसके बल से ढीली भी, जमी हुई;
आँख पर वही पानी;
स्वर पर वही सँवार।

"महगू महगा रहा" शीर्षक कवितासे यह पंक्तियाँ उद्धृतकी गई हैं। महगू और लुकुआ भी अब समझने लगे हैं कि यह नेता उनके अपने हितू नहीं हैं.

महगू सुनता रहा।
कम्पूको लादता है लकडी, कोयला, चपड़ा।
लुकुआने महगूसे पूछा, 'क्यों हो महगू, कुछ
अपनी तो राय दो ?
आजकल, कहते हैं, ये भी अपने नहीं ?'
महगूने कहा, 'हां कम्पूमें किरियाके
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पंडितजीका शागिर्द है;
रामदासको काँग्रेसमैन बतानेवाला,
जो मिलका मालिक है।
यहाँ भी वह ज़मींदार, बाजूसे लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं,
कभी कभी लाखोंपर हाथ साफ़ करते हैं।'

"बेला" में कविने उर्दू कविताके छन्दोका प्रयोग किया है। इस सग्रहमें एक बार फिर कविका छायावादी संगीत उमडा है, किन्तु उसके भावोमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो चुका है। जिस गतिसे इन पिछले तीन चार वर्षोंमें निरालाने लिखा है, वह हिन्दी साहित्यकारोकी ऑखें खोल देता है। यह भी शिकायत हुई है कि निरालाकी रचनाऍ असम हैं, उनमे कुछ ही अच्छी है। इसी प्रकार के कृतज्ञता-विहीन आलोचकोने छायावादी निरालाकी निन्दा की थी। "बेला" की सभी कविताऍ काव्य-कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं, किन्तु "बेला" मे कविके अनेक- प्रशंसनीय प्रयोग है। उदाहरणके लिये यह गीत पढिये -

रूपकी धाराके उस पार
कभी धँसने भी दोगे मुझे ?

विश्वकी श्यामल स्नेह सँवार
हँसी हँसने भी दोगे मुझे ?

बैर यह ! बाधाओंसे अन्ध !
प्रगतिमें दुर्गतिका प्रतिबन्ध !

मधुर उरसे उर जैसे गन्ध
कभी बसने भी दोगे मुझे ?

"बेला" की कविताओंसे अनुमान होता है शायद भविष्यमें निराला जी छायावादके सगीत और कुकुरमत्ताके यथार्थवादका समन्वय करें और इस प्रकार एक बार फिर हिन्दी काव्यको नवीन गति और दिशा दें। इसके चिह्न "बेला" में स्पष्ट हैं। इस संग्रहके अनेक गीतोंमे मधुर सगीतके साथ-साथ जीवनकी अकथ व्यथा भरी है।

प्रति जन को करो सफल।
जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से भरो सकल।
रंगे गगन, अन्तराल,
मनुजोचित उठे भाल,
छल का छुट जाय जाल
देश मनाये मंगल।"

"बेला" मे अनेक तरहके प्रयोग हैं। एक राष्ट्रीय कजली है :

काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे-कैसे नाग मँडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।

यथार्थवादी कविताएँ हैं, गजलें हैं, समरके गीत हैं। इनको पढ कर यह स्पष्ट होता है कि निराला एक प्रयोगवादी कवि हैं और रहेंगे। जब तक उनका पाठक उनकी एक काव्य-शैली ग्रहण कर पाता है, वह दो-तीन नयी शैलियाँ लेकर उसको चकित कर देते है। ऐसा कवि अपने जीवन-दर्शनमे कभी रूढ़िवादी नहीं हो सकता। इन नवीनतम प्रयोगोंके बीचसे भी कविकी क्रान्तिकारी वाणी आज सवेग उठ रही है :

विजयी तुम्हारे दिशा-मुक्तिसे प्राण।
मौन मे सुघरतर फूटे अमर मान।
तापसे तरुण आकाश घहरा गया,
घनोंमे घुमडकर भरा फिर स्वर नया।

निराला की युद्धकालीन कविता

निरञ्जन

दूसरे महायुद्धका समय निरालाजीके प्रयोगोका समय रहा है। इस कालमें हमारे देशने क्या-क्या महान घटनाएँ नहीं देखी। बङ्गालमें ऐसा अकाल पडा जैसा संसारके इतिहासमें पहले देखा-सुना न गया था। सन '४१ मे नौकरशाहीने कांग्रेसके नेताओको जेलोंमें ठूँस दिया। काफी दिनतक हमारा राजनैतिक जीवन दिशा-हीन सा रहा। युद्धके संकटका सभी हिन्दी-लेखकों पर प्रभाव पडा है। कुछने तो इन दिनो लिखना ही बन्द कर दिया था; कुछमें पुराने निराशावादने फिर सिर उभारा। कुछ लोग नये-नये प्रयोग करने लगे। ऐसे संकटके समयमें जनतामें विश्वास रखकर सही मार्ग पहचानना बड़े जीवटका काम था। युद्धकालका यह प्रभाव अनेक रूपोंमे निरालाजीकी रचनाओंमें भी दिखाई देता है।

युद्धके पहले वर्षोंमे उन्होंने व्यङ्गात्मक कविताएँ लिखी थी। इनमें 'कुकुरमुत्ता' की विशेष चर्चा हुई। अभी तक किसीने नामसे ही नगण्य कुकुरमुत्ता जैसी वस्तु पर लिखनेका विचार न किया था। लोगोंमें इस बात पर मतभेद रहा कि निरालाजी इस कवितामें किस पर व्यङ्ग करना चाहते हैं। इस मतभेदका कारण कविताकी अस्पष्टता है जो युद्ध-कालमे उनके विश्वासोंके डिग जानेसे पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवादकी नकल हो सकता है क्योकि ब्रह्मकी तरह वह बलरामके हलसे लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभीमें व्याप्त है। इसके साथ कुकुरमुत्ता दीन-वर्गका भी प्रतीक है और खादका खून चूसनेवाले गुलाबको वह कैपिटलिस्ट कहकर उसकी निन्दा भी करता है। लेकिन दुनियासे गुलाब मिटा दिये जॉय, और उनकी जगह कबाब बनानेके लिये कुकुरमुत्ते ही रह जॉय, यह रूपक भी चुस्त नहीं बैठता। उपयोगितावादके विकृत रूपको स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निरालाजीने प्रगतिवादको इसी तरहका उपयोगितावाद समझा था। इसलिये कुकुरमत्ताका व्यङ्ग जहाँ गुलाबको मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।

कहानी संक्षेपमें यो है। एक नवाब साहबने फारससे गुलाब मँगाकर अपने बागमे लगाये थे। वहीं एक गंदी जगहमें कुकुरमुत्ता भी फूला हुआ था। फारसके मेहमानको इतराते हुए देखकर देसी कुकुरमुत्तेने उसे लताड़ना शुरू किया। अपनी खातिर वह मालीको जाड़ा-घाम सहने पर मजबूर करता है। जो उसे हाथमे लेकर सूँघते रहते हैं, वह मैदाने जंग छोड़कर औरतकी जानिब भाग चलते हैं। अमीरों और बादशाहोसे सम्मान पानेके कारण साधारण लोगोंसे वह दूर रहा हैं। संक्षेप में:

रोज़ पड़ता रहा पानी,
तू हरामी ख़ानदानी !

वह उस छायावादी कविताका प्रतीक है, जो मनुष्यको ऐसी मँझधारमें छोड़ देता है, जहाँ कोई सहारा नहीं होता। वह ऐसे ख्वाब दिखलाता है कि लोग मुँहसे रसकी बातें करते हैं और पेटमे चूहे डंड पेलते है।

इसके बदले कुकुरमुत्ता अपने आप उगा है और गुलाबसे डेढ़ बालिश्त ऊँचा बढ़ गया है। वह एक तरफ भारतका छत्र है, तो दूसरी तरफ महायुद्धका पैराशूट है। वह क्या-क्या है, इसकी कोई गिनती नहीं। हाफिज और रवीन्द्रनाथ भी उसके आगे मात हैं। टी एस. ईलियट और 'वर्तमान धर्म' के लेखककी शैलीमें काफी समानता है, ईलियटपर उनकी पंक्तियाँ देखने लायक हैं :

कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर,
टी. एस. ईलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़नेवालों ने जिगर पर रखकर
हाथ कहा, लिख दिया जहाँ सारा !

नवाबका बगीचा जितना सुन्दर है, उसके खादिमोके झोपड़े वैसे ही घिनौने हैं। मोरियोंमे रुका हुआ पानी सड़ता रहता था। कहीं हड्डियाँ बिखरी थी और कहींसे लहरो और परोंकी गाड्डियाँ पड़ी थी। हवामे बदबू छाई रहती थी। यहीं पर किस्मतकी एक ही रस्सीसे बँधा हुआ 'एक खास हिन्दू-मुसलिम खानदान' रहा करता था। यहीं पर मालिनकी गोली रहती थी, जिसका नवाबकी लड़की बहारसे बड़ा मेल-जोल था। एक दिन बागमे जब बहार गुलाब देख रही थी, तभी गोलीकी नजर कुकुरमुत्तेपर पड़ी। उसने कुकुरमुत्तेके कवाबकी तारीफकी कि बहारके मुँहमे पानी आ गया। गोलीकी माँने कुकुरमुत्तेका कलिया कबाब बनाकर तैयार किया। बहारके मुँहसे तारीफ सुनकर नवाबने मालीसे कुकुरमुत्ता ले आनेको कहा। लेकिन अब बागमे एक भी कुकुरमुत्ता न था, सिर्फ गुलाब बचरहे थे। नवाबने खफा होकर हुक्म दिया, जहाँ गुलाब लगे हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता लगाया जाय, लेकिन दुर्भाग्यसे मुकुरमुत्ता गुलाबकी तरह लगाया नही जाता, इसलिये नवाबको कुछ दिन निराश रहना पड़ा।

'देवी' या 'चतुरी चमार' के साथ 'कुकुरमुत्ता' पढ़ें तो साफ मालूम होगा कि निरालाजीका व्यङ्ग पहलेसे निखरा नहीं है, बल्कि फीका पड़ गया है, नयी उलझनोमे उनका लक्ष्य अस्पष्ट हो गया है।

'खजोहरा' एक हास्यकी कविता है, जिसमे व्यङ्ग बिल्कुल दबा हुआ है। सावनके दिनोंमे ग्रामीण-जीवनका चित्र ही इसमे महत्वपूर्ण है। हाईकोर्टके मतवाले वकीलोकी तरह बादल भी जरूरतकी जगह न बरस, जहाँ पानी भरा है वहीं कहकहे लगाते हुए टूट पड़े। लोग ढोलकपर आल्हा गाते हैं और लड़कियाँ झूलोमे सावन गाती हैं। सावनमे भतीजा हुआ है, इसलिये बुआ भी गाँवमे आयी हैं। ससुरालसे फिर

स्वच्छंदता पाकर वह तालमें नहाने चली। टैगोरकी विजयिनीकी तरह वह पानीमे उतरी लेकिन कामदेवके बाणोके बदले खजोहराने उसका सत्कार किया। निस्संदेह निरालाजीके दिमागमें विश्वकविकी भव्य-कल्पना थी जिसमें नग्न तरुणी सरोवरकी सीढ़ियों पर गीले चरण-चिन्ह अंकित करती हुई अपने सौंदर्यसे कामदेवको परास्त करती है। लेकिन यह कविता उसपर पूर्ण व्यङ्ग नहीं बन पायी; सकेत मात्र ही मिलता है।

'स्फटिकशिला', 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज और मै' की तरह वर्णनात्मक कविता है। जिसका मुक्त छन्द अधिक उखड़ा हुआ है। लेकिन उसका अन्त बड़े मार्केका हुआ है निरालाजीने अपनी दृष्टिकी तुलना जयन्तकी चोचसे की है। स्नान करके आयी हुई युवती पर निगाह पडते ही जीवनकी ओर चाहें जैसे नष्ट हो गयी। जानकीका स्मरण करके निरालाजीने यह समझकर सन्तोष किया कि इस बहाने उन्हे दर्शन दिये गये। मानवीय भावनाओने उनके आध्यात्मवादको एक बार फिर झकझोर दिया है।

'अणिमा' के गीतोमे रहस्यवादकी झलक फिर दिखायी देती है। जीवनमें विषाद बढता गया है, उसे दूर करनेके लिये ज्ञानमय प्रकाशकी कल्पनाकी गयी है। चरण स्वच्छन्द न रहनेपर नूपुरके स्वर मन्द हो गये हैं। स्नेहके निर्झर बह चुके हैं, और जीवन रेत-मात्र रह गया है। 'परिमल' के ऑसू पोछनेवाले इष्टदेवकी तरह फिर कोई रहस्य-शक्ति सर झुकाने पर कविको धरतीसे उठा लेती है। कभी वह सोचते हैं कि जिसने मृत्युको वर लिया है, उसीको जीवन मिला है। कभी मनको समझाते हैं

गया अँधेरा,
देख, हृदय, हुआ है सबेरा।

परन्तु वास्तवमें सबेरा नहीं हुआ, उन्हे रह-रहकर वार्धक्यवाला भाव सताता है। उन्हे अपने पके हुए बालोकी याद आती है और उनका हृदय जैसे चीत्कार कर उठता है,

मैं अकेला, मै अकेला
आरही मेरे गमनकी सान्ध्य-बेला।

अपनी वेदनाका यह यथार्थवादी चित्रण भी उनकी नई कविताओकी विशेषता है।

'अणिमा' में ॲगरेजीके 'ओड' जैसी चीजे भी हैं, जो विशेष व्यक्तियोके प्रति लिखी गयी हैं। सन्त-कवि रैदासको ज्ञान-गंगामें नहानेवाला चर्मकार कहकर उन्होंने प्रणाम किया है। शुक्लजीसे अनेक वर्षोंतक विरोध पाने पर भी उन्हे समालोचनाकी अमावस्यामें उदित होनेवाला हिन्दीका दिव्य कलाधर कहा है। प्रसादजीको अग्रज कहकर उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पितकी है, इसके साथ कुछ ऐसी कविताएँ है, जिनमें किसी दृश्यका वर्णन करके अस्तु लिख दिया गया है। जलाशयके किनारे कुहरी सडकके किनारेकी दूकान-वाली कविताएँ ऐसी ही हैं। कही-कही जन-साधारणके साथ जीवनके कष्ट सहनेकी इच्छा प्रगट की है।

नये प्रयोगोमें निरालाजीकी गजलें भी शामिल हैं। इनका संग्रह 'बेला' नाम से प्रकाशित हुआ है। गजलोकी परम्परा उर्दूमे ही खत्म हो रही है, नये कवि नये ढंगके मुक्तक और गीत लिख रहे हैं। 'निरालाजीने 'गीतिका' में भी एक गजल लिखी थी,—'गयी निशा वह, हॅसी दिशाऍ, उडा तुम्हारा प्रकाश-केतन।' इस तरफ गजले लिखनेका विशेष कारण है, रघुपति सहाय 'फिराक' की हिन्दी-कवियो से वह बातचीत है जो 'तरुण' मे प्रकाशित हुई थी। इस बातचीतमें उन्होने हिन्दी-कवियोको नसीहत दी थी कि पुरानी गजलें घोलकर पीजानेसे हिन्दीवालोंकी भाषा चमक उठेगी। निरालाजीने भी दावा किया है कि पाठकोकी हिन्दी मार्जित हो जायगी अगर उन्होने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिये। इन गीतो और ग़जलोमें अक्सर रूपान्तर हो सकता है, उन्होने शमा-परवाना किस्मके पुराने प्रतीकोका उपयोग नहीं किया। गजलोकी परिपाटीसे उन्होने वाक्-चातुरी लेनेकी कोशिशकी हैं, लेकिन इधर उधर पंक्तियॉ खिलने पर भी वे बहुधा इस चातुरीका निबाह नहीं कर पाते। इसका एक कारण यह है कि उर्दू कवि सूक्तियोका ध्यान रखते है और निरालाजी भावनाके सघटनका। उनकी ग़जलोमें सम्बद्धता है, जो पुरानी गजलोमे नहीं मिलती। अनेक ग़जलोमे उन्होने रहस्यवादका ही रूपक बॉधा है, लेकिन कई गजलोमें देश और समाजके बारेमें भी बाते कही गयीं हैं। नाथके हाथ पकडने पर वीणाका बजना, किरण पड़नेपर कमलका खिलना, प्रभुके नयनोसे ज्योतिके सहस्रो शरोका निकलना, पुरानी कल्पनाऍ हैं। कही-कही भौतिक सौंदर्यके वर्णन हैं। 'गीतिका' के अनेक छन्दो जैसी मासलता है। देहकी सुर बहार पर स्नेहकी रागिनी बजना ऐसी ही कल्पना है। 'कहॉकी मित्रता वे हॅसके बोले' इस तरहकी पंक्तियोमे उन्होंने उर्दूकी बोलचालका रॅग अपनाया है। इन गजलोको पढनेसे ऐसा लगता है जैसे कविकी नयी चेतना प्रकाशमे आनेके लिये रूढियोसे टकरा रही है। ये बन्धन तोडकर वह चेतना अनेक बार जन-गीतोके रूपमे फूट निकली है। जिस समय नेता जेलोंमें थे, निरालाजी कजलीने एक लिखी थी।

काले काले बादल छाये,
न आये वीर जवाहरलाल।

इसी तरह इलाहाबादमे विद्यार्थियो पर पुलिसका आक्रमण होने पर कजली लिखी थी

युवक जनोकी है प्राण,
खूनकी होली जो खोली।

इन गीतोमें उन्होने सकेत किया है कि वह एक सफल जन-गीतकार हो सकते हैं।

गजलोमे अनेको पंक्तियॉ ऐसी हैं जिनमे उन्होने नये ढॅगसे नयी बाते कहीं हैं और चित्त पर चढकर फिर उतरती नहीं। यहॉपर कुछ उदाहरण दिये जाते है। ससारमे वे लोग विजयी कहलाते हैं। वह वास्तवमे दूसरोका लहू पीकर ही बड़े बनते है।

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरेका पिये जा रहे हैं।

एक गजलमें ग़ज़लवालोंको ही चुनौती देकर कहते हैः

बिगड़कर बनने और बनकर बिगड़ते एक युग बीता !
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।

पूँजीपतियोको ललकारकर कहते हैंः

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिलमे है।
देशको मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिलमें है ॥

आर्थिकसे कष्टसे पीड़ित जनता और आजादी दिलानेवाले नेताओको लक्ष्य करके कहा हैंः

आया मज़ा कि लाखों आँखोंसे दम घुटा है,
पटली है बैठनेको गोरेकी साँवले से

'नये पत्ते' में कुकुरमुत्ता वगैरह पुरानी कविताओके साथ 'मॅहगू मॅहगा रहा' जैसे कुछ नये व्यङ्ग-चित्र भी हैं। इस रचनामें हिन्दुस्तानकी राजनीतिमे जो नया अध्याय शुरू हुआ है उसीकी कुछ झॉकियॉ आयी हैं। गॉवमें किसानोका उद्धार करनेके लिये ऐसे नेता पहुॅचते हैं जिन्हें जमीदार और मुनाफाखोर अपना हितू समझते हैं। राष्ट्रीयताके नये उम्मीदवार जमीदारकी बाते सुनकर लुकुआकी समझमें नहीं आता कि यह सब क्या हो रहा है। कानपूरको लकडी-कोयला लादनेवाला मॅहगू उसे समझाता है कि कानपूरमें मजदूर 'किरिया'के जो गोली लगी थी वह मिल-मालिकके कारण, और आजकल उन्हीकी चॉदीसे राजनीति चमकरही है। लेकिन हमारे लिये लडनेवाले लोग भी हैं, जिनके नाम अभी नही सुनायी देते क्योकि "अखबार व्यापारियो ही की सम्पत्ति है।" मॅहगूको विश्वास है कि जब बडे आदमी अपनी धन-सम्पत्ति छोडेंगे तभी देश मुक्त होगा।

यद्यपि इन नयी रचनाओमें पहिलेके स्केचो और कहानियो जैसी स्पष्टता नही है, फिर भी राजनैतिक उलझनमे कविकी चेतना किसका साथ देरही है और किसके लक्ष्यको अपने जीवनका लक्ष्य बना रही है, यह स्पष्ट है। समाज और देशको लेकर आम बातें कहनेके बदले इधर उन्होने विशेष घटनाओ पर कविताएँ लिखी हैं। शाश्वत सत्य और ब्रह्मानन्द सहोदरकी कल्पनासे विचलित न होकर उन्होने बताया है कि लेखकका स्थान जनताके साथ है। उसीके सुख-दुख, आशा-निराशा, विद्रोह और विजयका चित्रण करके वह अपनी वाणी सार्थक कर सकता है। देशके जीवनमे एक ओर भाई-भाईकी मारकाट और गृहयुद्धकी लपटे फैल रही है तो दूसरी ओर मजदूर वर्गके नेतृत्वमे एक महान क्रान्तिकारी ज्वार आया है। निराला जीके विकासकी समूची परम्परा हमे सिखाती है कि इस ज्वारके साथ बढकर परिवर्तनकी शुभ घड़ी लानेके लिये हिन्दी-लेखकों और कवियोको आगे बढना है। उनके अदम्य जीवन और अनवरत साहित्य-साधनाका यही सदेश है कि हम देशको आजके घोर सकटसे मुक्त करें और स्वाधीनताके वातावरणमें फिर खुलकर सॉस ले सकें।

★

निराला

जानकीवल्लभ शास्त्री

(१)

गत-गौरव : रौरव-निहित गोप,
पनघट पर घटका घटाटोप—
वह बंद प्रणयमय कोप नन्द-नन्दन पर;
व्याकुल कालिन्दी-कुञ्ज-कूल,
उडती वृन्दावन-मध्य धूल,
अब कहाँ तनों में फूल, मनोहर मधुकर !

(२)

चूता न चन्द्र से तरल गरल,
चुभती न मुकुल-शय्या, परिमल,
कल-कमल-मुखी अब कौन सरल-उर भोरी ?
जो प्रतिपल बल खाती फिरती
निज रूप-भार से भी गिरती
ले युगल-कलस तिरती स्मर-सिन्धु न गोरी !

(३)

स-स्मित-चित सरस सुमन चुन-चुन
वनमाल गूँथती देख शकुन,
रुन-झुन रुन झुन अब कहाँ मधुर नूपुर-रव !
यौवन-वन-विहरण, अलि-विलास,
उल्लास-हासमय रम्य रास,
हसँ रहा वहाँ अब सर्वनाश, दैविक-दव !

(४)

तज रे ब्रज की रज-कीर्ण गली
नागिन-लट, मृदु पट, कनक-कली
वृषभानु-लली छल चले छली चञ्चल पद
गा रहे 'सूर'—"प्रभु अबु ठगौ न"
'मीरा' बिसूरती—कौन, कौन !
'मति,' 'देव,' 'बिहारी' मौन, मिटा मधु का मद !

(५)

अति पतित भावनाएँ गढ़-गढ़
गत तृष्ण कृष्ण-सिर पर मढ़-मढ़
उत्तुङ्ग शृङ्ग चढ़-चढ़ पाताल सिधारे,
जैसे बालक निज छाया से,—
था ब्रह्म खेलता मायासे,
उस पर कवि-मन भरमाया; स्मर-शर मारे !

(६)

विक्रय कर प्रतिभा का निर्दय
कुछ अन्य फिरे गाते तन्मय—
नृप गुण ' कहते विनिमय यह है कविता का;
निर्वासित करता एक रुष्ट
तब करते पर को सु-परितुष्ट,
बादल-दल कज्जल-पुष्ट सत्य-सविता का !

(७)

यों नीरस हिन्दी-क्षिति ललिता
स्मर-शर-सङ्कुल-कवि-कुल-कलिता
अवला-वलिता, दलिता होती जाती थी;
तुलसी सुराञ्चित चिर-धन्या
भारति-सुरभारति की कन्या
नागरी परी वन्या वन दुख पाती थी !

(८)

कर छिन्न-भिन्न तम अस्त-तन्द्र
उतरे तब नभ से ' हरिश्चन्द्र '
अनुरूप रूप, उर मधुर,—मन्द्र स्वर, मनहर,
निज तन-मन-धन सब कर अर्पण
दे दिया उसे नव-आकर्षण,
पीयूष पिलाया हर्षण अञ्जलि भर-भर !

(९)

छाई परिमल भर हरियाली,
लोहित पल्लव, डाली-डाली,
फिर कूक उठी कोयल काली मधुवन में,
इस छवि की स्थिरता-हेतु धीर—
तब कर्मवीर श्री ' महावीर '
सोचने लगे प्राचीर-सृजन-विधि मन में,

(१०)

' गुरु,' ' गुप्त,' ' सनेही,' ' रामचरित,'
' शङ्कर,' ' नवीन ' ' लोचन,' जन-हित—
' श्रीधर,' लक्ष्मीधर,' ' रत्नाकर ' भर भाई,
' पाण्डे नारायण रूप,' प्रखर-
' हरिऔध ' काव्य-पथ-सौध-शिखर;—
से सज ' सरस्वती ' नई निखर कर आई।

(११)

तन्द्रिल हृत्तन्त्री झंकृत कर,
कुछ कवि अक्षय मधुमय स्वरभर,
कर रहे अमर शुचि सुरुचि-पूर्ण कविता को,
बढते-ही नित्य चले जाते,
खा ठेस मन्द-मृदु मुसकाते,
सम-पथ मे चमकाते प्रतिभा-सविता को !

(१२)

कृत विद्य, सिद्ध-रस, सौम्य, सुमुख,
इन मे ही 'पन्त,' 'प्रसाद' प्रमुख,
सह दुख-सुख विविध विधानाभिमुख जगत नव,
माधुरी-भरी पहले की गति,
महिमान्वित अन्य दयामय मति,
यदि एक प्रकृति की प्रतिकृति, पर आत्माऽऽसव !

(१३)

शेली-रवीन्द्र-नन्दित निनाद,
हिन्दी-उर्वर-उर पर अबाध—
छवि-छायावाद अगाध जलधि-जल छाया,
उसकी चंचल लहरों पर स्थिर,
गुरु-ग्राह मकर-कर से घिर-घिर,
पौरुष-प्रगल्भ, कवि एक लभ्य-चिर आया !

(१४)

परिपुष्ट काय, अनपाय-द्योति,
तम-तोम-होमकर-ज्वलज्ज्योति,
भारती-आरती, सुधा-ज्योति-सी-विभ्रम,
उद्दाम-प्रतिभ, अतिशय प्रशान्त,
आयत-दृग, दीप्त-ललाट, कान्त,
पर-तेजोऽसह श्री सूर्यकान्त रवि-मणि-सम

(१५)

भावाभिव्यक्ति की शक्ति प्रचुर,
ध्वनि रणित रम्य-रस-प्लावित उर,
अति-प्रौढ-पदातालि-चलित काव्य-कृति-धाता,
मन्थरतर-स्वर-भर सूक्ति-सूति,
उन्मुक्त-युक्ति, अनुभूति-भूति,
अभिनव भवभूति अलौकिक-मोद-प्रदाता !

(१६)

चतुरस्र प्रगति, रोचन-लोचन,
अद्भुत करते काव्यालोचन,
कविता-वन्दिनी-विमोचन गुरु-कारा से;
नित-नित नव-निर्मिति-सफल-यत्न,
दीधिति-अवधीरित-तम-सपत्न,
हिन्दी-नभ में विच्छुरित-रत्न तारा से !

(१७)

गौरव से गिरि-गुरु-सा उन्नत,
पर मृदु-स्वभाव धरती-सा नत,
अविरत साहित्योन्नति-रत-ललित-कलाञ्चित;
अतिमेध्य मध्य मणि काव्य-हार,
दार्शनिक, दीप्त-चक्षुः-प्रसार,
शारद-वीणा-झङ्कार-सार मधु-मज्जित !

(१८)

सर्वतोमुखी-प्रतिभा-भासुर,
करुणा-करुणालय निर्भय-उर,
कण्टकमय-पाटल-हारि-हार-सुरभित-मति,
सुन्दर, शिव, सत्य सदोपयुक्त,
गद्यमें, पद्यमें समोन्मुक्त,
हिन्दी-सेवक का रूप धरे सुर या यति !

(१९)

आनन्द, इन्दु-रस-बिन्दु अमर,
जिसका गिरि-उर-भेदक निर्झर,—
क्षिति का ही-तल शीतल करता लोचन जल;
जिसकी भाषा घन, सिंह-नाद,
उच्छल-प्रतिभा-यौवनोन्माद,
उन्मुक्त भाव जिसके निनाद-से कल-कल !

(२०)

सेवा-व्रत-हृत-पार्थिव-प्रमोद,
हिन्दी-मन्दिर के मूर्त मोद,
साहित्य-सरस-अच्छोद कमल की माला;
चिर आत्माराम, अगाध-मेध,
सारस्वत सित-शर शब्द-वेध,
अविराम सिद्ध यह नाम प्रसिद्ध-'निराला' !

★

निरालाका युग और उनका काव्य

राजीव सक्सेना

प्रथम विश्व-व्यापी महायुद्धके बाद देशमें एक ज़बर्दस्त आर्थिक-संकट पैदा हुआ। 'किरानी' वर्गमे बेकारी और बेरोजगारी फैल गयी। फलत: इस वर्गमे एक-व्यापक असन्तोष घर करने लगा। सन् '२० के सत्याग्रह आन्दोलनके विफल हो जानेके बाद इस असन्तोपकी परिणिति निराशामे हुई।

उधर गाँवोंमें पूँजीवादी-साम्राज्यवादके 'गोपन-शोषण' से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था नष्ट हो चली थी। ग्रामीण उद्योग-धंधोंमें अब कुछ न रखा था। बाप-दादोंकी जमीन पीढ़ी-दर-पीढी बढते हुए परिवारके लोगोंमें बँटती जाती थी; बढ़ती बिलकुल न थी। जमीदारोंके जुल्मका ओर-छोर न था, तिसपर कर्जेका बोझा दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था। खेती एक जुआ मात्र रह गयी थी। इसलिये किसानोंके दलके दल शहरोमे आकर मजदूर बन चले थे। ऐसी दशामें ग्रामीण-सस्कृतिका ह्रास हो चला था। इनके कजरी-कबीरको प्रेरणा कहाँसे मिलती :

भुखियाके मारे बिरहा बिसरिगा, भूल गयी कजरी-कबीर,
देखिके गोरिक मोहिनी सूरति अब उठै न करेजवा मैं पीर।

मध्यवर्गने एक युगमें—'भारत-जननी' और 'भारत-दुर्दशा' से 'भारत भारती' तक—सांस्कृतिक पुनर्जागरणका नेतृत्त्व किया था। उसने संदेश दिया था· हम आज दलित हैं, तो क्या हुआ ?, सदा ऐसे नहीं थे, हमारा अतीत गौरवपूर्ण है; आज फिर हम उठकर खड़े हो गये हैं, हमारा भविष्य उज्ज्वल है। यह स्फूर्त्ति और विश्वास आगे बेरोजगारीकी मार खाकर कुंठित हो गया। एक सांस्कृतिक गतिरोधका जन्म हुआ साम्राज्यवादके साथ नवागत मान-मूल्योंको स्वीकार करनेका अर्थ यह होता कि हम अपनी दीन-हीनता और पराधीनता स्वीकार करते हैं; फिर मार्ग किधर ? किसी अन्य वैज्ञानिक मार्गके अभावमें भारतने मुड़कर देखा अतीतकी ओर और, विध्वस्त सामन्तवादी युगके अवशिष्ट मान-मूल्योको ही पार लगानेवाला समझकर कहा·

पुनि धेनु, वेद, अरु विप्रको करहु मान सुत प्रान सम,
इनके पाले सब लोक हित सधै सहित पावन परम।

सामाजिक विषमतासे पीड़ित, मध्यवर्ग नैतिक, धार्मिक और सदाचार-सम्बन्धी नियमोंको और अधिक जकड़कर क्या प्रेरणा प्राप्त करता।

किन्तु इस समय एक और नया वर्ग—औद्योगिक मध्यवर्ग—उत्पन्न हो चुका था। प्रारम्भमे युद्ध-प्रयत्नोंमे सहायता पानेके उद्देश्यसे विदेशी साम्राज्यवाद-पूँजीवादने इस वर्ग

को सहारा दिया था, लेकिन युद्ध समाप्त होते ही साम्राज्यवादी-नीतिके अनुसार शासकोंने इस वर्गपर अकुश लगाना प्रारम्भ कर दिया। यह वर्ग प्रसार और विकास चाहता था, अतएव इसने व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समाज-स्वातंत्र्यकी मॉगकी और राष्ट्रीय अन्दोलन का नेतृत्व किया।

विदेशी साम्राज्यवादी-पूँजीवादी सस्कृति और नवोदित स्फूर्तिशील औद्योगिक मध्यवर्गने एक यह आशा पैदा कर दी थी कि व्यक्ति अपनी शक्तियोंका विकास करके उन्नति कर सकता है। इस धारणाने सभी वर्गोंको—विशेष रूपसे बुद्धिजीवी मध्यवर्गको—यथेष्ट प्रेरणा दी।

निराला टूटते हुए किसान-वर्गमेंसे आकर बुद्धिजीवी वर्गमें सम्मिलित हो गये थे।

द्विवेदी युगकी रूढ़िग्रस्तावस्थाके गतिरोधके विपरीत नवीन व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक-स्वातंत्र्यका आन्दोलन प्रगतिशील और स्फूर्तिप्रद आन्दोलन था। 'निराला' इस आन्दोलनके अग्रदूत बने। उन्होने उद्घोषित किया .

"हिन्दीके साहित्यिकोका अन्याय सीमाको पार कर जाता है। उन्हें अपनी सूझके सामने दूसरे सूझते ही नहीं। हमें उनकी ऑखोमें उँगली कर करके समझाना है, और बहुत शीघ्र वैसे संकीर्ण विचारवालोको साहित्यके उत्तरदायी पदसे हटाकर अलगकर देना है। तभी साहित्यका नवीन पौधा प्रकाशकी ओर बढ़ सकेगा।"

निरालाने नवीन भाव, नवीन भाषा और नूतन छन्दोंकी मॉगकी। बडे विश्वास और धैर्यके साथ उन्होने अपनी रचनाऍ जनताके सम्मुख रखी, वड़े-वड़े कवि सम्मेलनोमें हजारोकी जनताको मुग्ध करके दिखा दिया, कि जनता यही चाहती है।

हर युगमें जब रूढियोको चुनौती देता हुआ कोई आन्दोलन उठता है, तब रूढिग्रस्त लोग उस आन्दोलनको "विदेशी अनुकरण" और "परम्पराके शत्रु" कहकर दबानेकी चेष्टा करते हैं। निरालाको भी ऐसे आलोचकोसे काफी लोहा लेना पडा।

ऐसे आलोचकोको ललकारते हुए निरालाने कहा, "हजार वर्षसे सलाम ठोकते नाकमें दम हो गए, अभी सस्कृति लिये फिरते हैं।"

प्रगतिशील चीजोको विदेशी मानकर उनकी छायासे वचनेवाले लोगोंकी खबर लेनेमें निरालाजीने कोई कोर-कसर न रखी। भाषा भी वे ऐसी इस्तैमाल करते थे कि चोट करारी बैठती थी। एक स्थान पर वे लिखते है:

"पहलेके आदमी पीताम्बर पहनकर भोजन करते थे या दिगम्बर होकर, यह सब बतलाना बहुत कठिन है। पर अगर जरा अक्लका सहारा लिया जाय तो दिगम्बर रहना ही विशेष रूपसे सनातन धर्म जान पड़ता है। कारण सनातन पुरुषके बहुत बाद ही कपड़ेका आविष्कार हुआ होगा।"

इस तरह उन्होने स्पष्ट रूपमें घोषित कर दिया कि भारतीय संस्कृतिकी रक्षाकी दुहाई देकर रुढिवादको कायम नहीं रक्खा जा सकता। अपनी संस्कृतिको और अधिक विस्तृत और व्यापक बनाना ही उसकी रक्षा करना है।

इस नये साहित्यिक-सास्कृतिक आन्दोलन (जिसका नेतृत्व प्रसाद, पंतके साथ निराला कर रहे थे) की मूल प्रेरणा भावोंको प्रसार और व्यापकता प्रदान करना था। इसने जहाँ द्विवेदी-युगकी रूढिग्रस्त नैतिकता और उसकी इति-वृत्तात्मक शैलीका विरोध किया, वहाँ रीतिकालीन दरबारीपनका भी विरोध किया। रीतिकालीन कवि अलंकारोके सौंदर्यमे इतने खो गये थे कि मानवीय भावनाओके सौंदर्यका उनके निकट कुछ मूल्य न रह गया था। रसके उद्दीपनो और सञ्चारी भावोको खोजते-खोजते वे उसके मूल स्रोत जीवनको ही भूल गये, और काम-संचारी भाव-विभावोंको ही सब कुछ मान बैठे। निरालाने इस हृदय-हीनता और कुत्सित धारणाके विरुद्ध सख्त जेहाद किया। बिहारीके एक दोहेको लेकर निरालाजीने लिखा, "पतिदेव थोडी देरके लिये भी धैर्य नहीं रख सके। दूसरोकी स्त्रियोके बीच कूद पड़े और अपनी 'अर्जेन्ट' प्रार्थना सुना दी। समझमे नहीं आता इसमे कौनसा चमत्कार है।"

नवीन साहित्यिक-आन्दोलनको प्रेरणा दी सन्त और भक्ति-काव्यने। तुलसी, कबीर, रैदास आदि जहाँ सामाजिक उत्तदायित्वको निभाने और रूढि-रीतिकी मर्यादाओंके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिये बल देते हैं, वहाँ चण्डीदास, गोविन्ददास, सूरदास आदि सहज मानवीय प्रेमकी तन्मयताको स्फुरित करते है।

निरालाने अपने लेखोमे वैष्णव कवियोकी परम्पराओकी भूरि भूरि प्रशंसाकी, और उनसे प्रेरणा ली। 'देख दिव्य छवि लोचन हारे' अथवा 'नयनोके डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' आदिमे तो भक्त-कवियोकी वाणीकी गूंज स्पष्ट है।

सन्त और भक्ति परम्पराने इस युगके अनेको दार्शनिकोको प्रेरणा और शक्ति दी थी। रवीन्द्र और विवेकानन्द ऐसे ही दार्शनिक थे। रवीन्द्रने बॅगला कविताको रूढियोके बन्धनोसे मुक्त करके नवीन प्रसार दिया था। उन्होने अंग्रेजी कविताकी गीतात्मकताके साथ भारतकी समूची पौराणिक सस्कृतिके प्रकाशमे ही नये नैतिक मान-मूल्योंको प्रतिष्ठित किया, और सामन्त-युगीन मर्यादावादकी सकीर्णताको नष्ट किया।

विवेकानन्दका आन्दोलन भी समाजकी रूढि-रीतियोंको तोड़ने और राजनीतिक दासतासे मुक्त करनेकी भावना लेकर उठा था। अपनेको दीन-हीन समझनेवाले मध्य वर्गको विवेकानन्दने वेदान्तका दर्शन देकर आत्मगौरव अनुभव करनेका अवसर दिया। उन्होंने कहा, कि पश्चिम ही सब कुछ नहीं है। असली सुख और शान्तिका मार्ग तो हम भारतवासियोंके पास ही है। निरालापर रवीन्द्र और विवेकानन्द दोनोंका प्रभाव पडा है।

लेकिन वेदान्त संसारको ज्ञान-जन्य मानता है। ऐसी अवस्थामे भौतिक-विकासके द्वारा आत्मिक लाभ पहुंचनेमे आस्था कैसे रखी जा सकती है।

निरालाके अन्दर इस तरह अंतर्विरोधी प्रवृत्तियाँ पैदा हो गयीं थी। एक तरफ वेदान्तियोंकी तरह वे सृष्टिको ज्ञान-जन्य मानते थे, दूसरी तरफ वे भौतिक-विकासकी उपयोगिता भी देखते थे। उनके लिये एक तरफ सृष्टिको ज्ञान-जन्य मानकर भाव-लोकके सर्वांग सुन्दर काल्पनिक आध्यात्मिक-जीवनका आकर्षण था, दूसरी ओर जीवनका यथार्थ था, जो वास्तविकताको पहचाननेके लिये बार-बार खींचता था।

'निराला' स्वयं किसान-वर्गसे आये थे जिसका, "जीवन चिर कालिक क्रन्दन" था। किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है, नवोदित पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था व्यक्तिको यह विश्वास दिला रही थी कि व्यक्ति अपनी शक्तियोंका विकास करके सारी कठिनाइयोंको पार कर सकता है। इस भावनासे सभी पीड़ित वर्गोंको एक बल मिला था। और वे कह उठे थे'

मेरा अन्तर वज्र कठोर
देनाजी बरबस झकझोर

उधर उठते हुए भारतीय औद्योगिक वर्ग और पूँजीवादी-साम्राज्यवादके संघर्षसे एक नयी विद्रोही भावना पैदा हो गयी थी। नवीन कवियोने जीवनके संघर्षसे जूझनेके लियें इस विद्रोही भावनाका नेतृत्व किया। उन्होंने कहा

उंगलीके पोरोंमें दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

सारे देश और समाजको उन्होने एक बार ललकारा, "जागो फिर एक बार !"

किन्तु नवीन युगका विद्रोह व्यक्तिवाद पर आश्रित था। व्यक्ति व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक-स्वतंत्रताके लिये विद्रोह करना चाहता था, सारी आर्थिक, सामाजिक, और राजनैतिक परिस्थितियोको बदलना चाहता था, लेकिन उसे यह नहीं मालूम था कि ऐसे आमूल परिवर्त्तन कैसे होते हैं, और कौनसी ऐसी सामाजिक शक्ति है जो इन परिवर्त्तनोको उत्पन्न कर सकती है। अतएव वैज्ञानिक मार्गके अभावमे कुछ कवि निराशावादी हो गये और कुछ भाग्यवादी। दोनो ही प्रकार के कवियोंने पलायनवाद—वास्तविकतासे भागकर एक नये सुन्दर शाश्वत और सुखी संसारकी कल्पना—का सहारा लिया। डाक्टर रामविलासके शब्दोमें, "समाजकी रूढ़ियोसे अपना मेल न कर सकनेके कारण कवि कभी अपना स्वप्नलोक बसाता है, कभी प्रकृतिकी शरण लेता है, कभी भविष्यके सुनहरे संसारके गीत गाता है।" निरालाका "हमें जाना है जगके पार" ऐसे ही पलायनवादका उदाहरण है।

निराला की प्रेम और सौंदर्य सम्बन्धी कविताओका स्रोत भी यही पलायनवाद है। 'जुहीकी कली' कविताकी कल्पना निरालाने श्मशानमें खड़े होकर की थी, मानों जिन्दगी एक श्मशान है, और उसके बीच खड़े होकर कवि नवीन सुख और

सौंदर्य पूर्ण 'जुहीकी कली' के संसारकी कल्पना कर रही हो। किन्तु, इन सौंदर्य और प्रेमकी कविताओंने भी एक प्रगतिशील स्वरूप ग्रहण कर लिया था। रीतिकालके दरबारी-पन और द्विवेदी-युगकी मर्यादावादी नैतिकतासे यह नवीन मुक्त प्रेम और सौंदर्यकी पूजाका स्वरूप निश्चय ही अत्यधिक मानवीय था। 'जुहीकी कली' का पवन जब कली को झकझोर कर उसके गोल कपोल चूम लेता है, तब मानो छायावादी युगका व्यक्तित्व द्विवेदी युगकी रूढियोके विरुद्ध विद्रोह कर रहा है। अपने इसी मानवीय स्वरूपके कारण ये प्रेम और सौंदर्यकी कविताएँ लोकप्रिय हो सकी, और युगकी सर्वश्रेष्ठ कविताओंमे अपना स्थान बना सकी।

किन्तु पलायनवाद छायावादकी सबसे बडी कमजोरी है, दैन्य-दुख और पारिवारिक जीवनकी विषमताको मिटानेके लिये जब कोई रास्ता नहीं दिखाई देता, या प्रस्तावित मार्गसे वुद्धिजीवी अपना सम्बन्ध जोडनेमे असमर्थ होता है, तब इस गहन अभावको भुलानेके लिये अनन्त दुख और अनन्त विरहकी कल्पना जन्म लेती है। हिन्दीके छायावादी युगके अधिकाश कवियोकी कविताओंमे यह प्रवृत्ति प्रतिविम्बित होती है।

मगर संघर्षशील वर्ग उक्त कल्पनाको ग्रहण करनेसे अस्वीकार कर देता है। निरालाका सम्बन्ध निरन्तर किसान-वर्गसे रहा है, और किसान-वर्ग छायावादी युगके बीचमे ही अपनी निष्क्रियताको भंग करके एक संघर्षशील स्वरूप धारण कर चुका था। अतएव निरालाने अनन्त दुख और अनन्त-विरहकी कल्पनाका विरोध किया और उसका मजाक बनाया। "कलाके विरहमें जोशी-बन्धु" शीर्षक लेखमें निरालाने कतिपय छायावादियोंकी इसी प्रवृत्ति पर हमला किया है। उन्होने स्पष्ट रूपमें घोषित किया कि "सामाजिक हिताहितकी चिन्ता न करके मनमाना साहित्य लिखना वैसा ही है, जैसा महमूद मियॉका अपने बकरेको पूँछकी तरफसे जिबह करना।"

संघर्षशील वर्गके अन्दर अमित आशा, और अनन्त विश्वास होता है, फिर अनन्त विरह और अनन्त दुख कैसा। निरालाने कहा "जिस सृष्टिके केन्द्रमे ब्रह्म है, आनन्द है, सत्य है, ज्ञान है, वहॉ अनन्त व्यापी विरह, अनन्त वियोग, अनन्त अज्ञात, अनन्त दुख! क्या बात, क्या कहने!"

सामाजिक विषमता—"जीवन चिर-कालिक क्रन्दन"— को मिटानेके लिए निरालाका किसान-कवि, अपने कविताके प्रारम्भ कालमे ही, विप्लवके वीर बादलको बुला चुका था, उसने लिखा था

रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गनाङ्ग से लिपटे भी
आतङ्क अङ्क पर कॉंप रहे है
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढॉंप रहे हैं,
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,

तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लवके वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवनके पारावार ।'

लेकिन उस समय, किसान-वर्गके शोषित स्वरूपको समझने पर भी उनका ध्यान वर्ग-संघर्ष पर नहीं था। उनके कृषक स्वयं विप्लवमें भाग नहीं लेते—वे विप्लवके वीरको बुलाते हैं, जो कलकत्ता, इलाहाबाद, लखनऊके मध्यवर्गके बीच रहनेवाले स्वयं कवि निराला हैं। लेकिन जैसा डा० रामविलास शर्माने एक जगह कहा है, "अकेला विप्लवी वीर चाहे वह अद्वैतको ही अपने भीतर क्यो न समेट ले, सामाजिक व्यवस्थामें गहरे परिवर्त्तन नही कर सकता।" अतएव निराला प्रेम और सौन्दर्यके चित्रो, और नवीन बल अनुप्राणित करने वाली ऐतिहासिक कथाओको लेकर जिन्दगी को निराशाके गर्त्तमें गिरनेसे बचाते रहे।

लेकिन गॉवसे, उसकी उर्वर भूमि और जीवन-सम्पन्न किसान-वर्गसे निरालाका बराबर सम्बन्ध रहा। कलकत्ता, इलाहाबाद, लखनऊके अलावा, गढ़ाकोला ग्राम और उसकी यथार्थतासे उनका बराबर सम्बन्ध रहा। बंगालमें सम्पन्न मध्यवर्गके बीच रहने पर भी उन्हें घर लिखना पढा था; "अगर खर्चेकी तकलीफ हो तो वर्तन बेच डालना।" खुद जीवनमे उन्हे कितनी कठिनाइयॉ उठानी पडी, अपनी प्यारी बेटी 'सरोज' की वे अच्छी तरह सेवा-सुश्रूषा भी न कर सके 'सरोज-स्मृति' कविताके रूपमें उनके व्यक्तिगत दुःखोंकी अजस्र-धारा फूट पडी थी, वही आगे चलकर गढाकोला गॉवके सैकडो किसानोके दुखकी पावन गंगाधारामें मिलकर एक हो गयी। 'कुल्ली भाट' में उन्होंने गॉवका सजीव चित्रण किया है, गॉवकी पाठशालामे पढानेवाले कुल्लीको देखकर कवि, "अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जम्बुको में वह सिह है ये इतने दीन दूसरोके द्वार पर नहीं देख पडते ? मै बार–बार ऑसू रोक रहा था। इसी समय बिना बनाव, बिना सिंगारवाले पासी, धोबी, कोरी दोनेमें फूल लिये हुए मेरे सामने आ आकर रखने लगे। मारे डरके हाथ पर नहीं दे रहे थे कि कहीं छू जानेपर मुझे नहाना होगा। इतना नत, इतना अधम बनाया है मेरे समाजने इन्हे लज्जासे मै वहीं गड गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती-समझती है। वहॉ चालाकी नहीं चलती। ओफ! कितना मोह है। मै ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ!——फिर क्रान्तिकारी!!!"

सन् '३० से '३९ तक–हिन्दुस्तानके हजारो कुल्ली गॉवोकी पाठशालाओ मे अछूतोको पढ़ाकर किसानोको जगानेकी कोशिश कर रहे थे। निरालाको अपने किसान-वर्गसे इतना प्रेम था कि कुल्लीको देखकर उनका ब्रह्मवादी अहंकार चूर-चूर हो गया। उनके विश्वासोकी नीव ढह गयी। ईमानदारीसे उन्होने देखा कि उन्हे जो करना

चाहिये, वह नहीं कर रहे हैं। एक बेचैनी और अशान्तिके साथ वे नये मार्गोको खोजने लगे। अपने काव्यके विषय, छंद, भाव, गति अदि सभीमे उन्हें परिवर्त्तनकी आवश्यकता जान पड़ी। '३९–'४६ तक उन्होने इसी दिशामें प्रयोग किये।

'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' उनकी इस कालकी रचनाओके सग्रह हैं।

पुराने विश्वासोके ढह जाने पर पहले कविके ऊपर एक विषादकी गम्भीर छाया आ पडती है

गहन है यह अन्धकारा,
स्वार्थके अवगुण्ठनोंसे
हुआ है लुण्ठन हमारा।

एक बार फिर उन्होने अध्यात्मवादका सहारा लेना चाहा, और कहा

मरण को जिसने वरा है,
उसीने जीवन भरा है।

विषादकी गहराई इतनी बढ गयी, कि वे बोले

मैं अकेला, मै अकेला,
देखता हूं, आ रही मेरे गमनकी सान्ध्य बेला;

युद्ध-कालके आर्थिक-सकट और तज्जनित निराशाने निरालाकी किकर्त्तव्य विमूढता पर विषादका एक रंग चढा दिया था। लेकिन 'नये पत्ते' और 'बेला' की रचनाएँ इस बातका सकेत देरही हैं कि इस द्वन्द्वके युगमे भी उनकी सहानुभूति किस ओर है, पलडा किधर भारी है। कुल्लीसे प्रेम करनेवाला कवि ही बदलू, महँगू, झींगुर अदि किसानोंसे भी आत्मीयता स्थापित करता है।

बदलू अहीर है, उसके यहॉ जमीदारका आदमी गोड्इत बीस सेर दूध लेने आता है, क्योंकि गरीब लछमिनके बागको हडपने लिये जमीदारने डिप्टी साहब और दरोगाजीको बुलाया है। गोड्इत अपने मालिक और डिप्टी साहबका रौब बदलू पर जमाने लगता है, ताकि दूध मुफ्त मिल जाय। इस पर बदलू तानकर ऐसा घूँसा मारता है कि गोड़इत जमीन चूमने लगता है, क्योंकि "वह प्रेमीजन था।" उधर सारा गॉव जमा हो गया और "कुछ नही हुआ," "कुछ नही हुआ" कहने लगा। इधर थानेदारके सिपाही आये और दाम दे-दे कर चीजे ले गये। लछमिनके बागके मामलेमे भी किसानोने सही-सही बात कही, कोई भी जमीदार और नौकरशाहोसे दबा नही।

इसी तरह एक दूसरी प्रसिद्ध कविता "महगू महँगा रहा" है।

मॅहगू गॉवका किसान है। किसानोका उद्धार करनेके लिये नेता गॉवमे पहुॅचते है, और बडी-बडी तकरीरे करते हैं। लेकिन इन राष्ट्रवादी उम्मीदवार जमीदारकी बाते लुकुआ जैसे किसानकी समझमे नहीं आती। मॅहगू एक मजदूर है, कानपुरको लकडी कोयला आदि लादता है। वह लुकुआको समझाता है कि कानपुरकी मिलमे मजदूर 'किरिया'को जो गोली लगी थी, वह एक मिल-मालिकके कारण, और यह नेता उन्हीके पैसे चलते हैं। लुकुआ घबरा गया। बोला, "हम कहॉ जॉय।" तब मॅहगूने कहा:-

निराला जी के प्रति

नरेन्द्र शर्मा

[१]

स्वार्थ तज, परमार्थ के तट पर गए,
बाँधे न बौद्धिक सेतु !
ख्याति के निखरे शिखर पर रोप आए
तुंग भगुवा केतु ।

[२]

शत्रु और शिकार
सामाजिक अनैतिक अपहरण के ।
अमित-बल घन्नाद-स्वर-सगीत
जीवन-जागरण के ।
तुम सदाशिव सुन्दरम् के दृढव्रती
बलभद्र पायक !
वज्र-दृढ और कुसुम-कोमल
वीर बादल राग गायक !

[३]

है अनित्य प्रपंच जग का,
राग-द्वेष अनित्य जग मे,
चल-विचल गति मे प्रगति मे
नित्य बस साहित्य जग मे !
आर्य वाणी ध्वनित जिसमे—
देश स्वर्ग-प्रदेश है यह !
ऋषि मनस्वी, कवि यशस्वी,
संत जन का देश है यह !

[४]

दिग्गजों की जातिके तुम,
मनुज जन्मे जगतमें इस हेतु—
आर्य नभमें पुण्य छवि छहराय,
फिर फहराय कविका त्याग-गैरिक-केतु !

निराला

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जिसने श्री. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को समीपसे देख लिया और ठीक ठीक समझ लिया, वह आजके समाजको— जिसका चौखटा सरासर चर्रा रहा है— समझनेमें समर्थ हो गया।

मै अभागा हूँ जिसने आजतक न प्रेमचन्दका 'गोदान' या 'कफन' पढा, न प्रसादकी 'कामायिनी' और निरालाका तो एक प्रकारसे कुछ नहीं पढा। फिर भी मैने निरालाको देखा है।

अबोहर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें निरालाके 'कुकुर-मुत्ता' के पाठने समा बॉध दिया था। आज भी उसकी अनेक कडियॉ बहुतसे श्रोताओंके लिए दुर्बोध होंगी, वैसी ही, जैसी निराला की 'निराली' चर्य्या। वह मंचपर बैठे हुए उसी ठाटसे सिग्रेट पीने लगे, जैसे कॉग्रेस मंचपर मौलाना अब्दुल कलाम आजाद! उन्होंने अपना जो भोजनका हिसाब-किताब स्वागत-समितिको लिख कर दिया उसमें साफ तौर पर श्वेत-शालिग्रामकी चर्चा थी —स्वागत समितिके आर्य-समाजी सदस्योको चुभनेवाली। उस समय अनेक लोगोंने निरालाकी चर्चा की किसीने धीमे स्वरमे, किसीने खुलकर।

अबोहर-सम्मेलनके ही ठीक बाद लाहौरकी एक सभामे जो लाजपतराय भवनमें हुई थी— निराला कविता पाठ करने खडे हुए। न जाने उस दिन वे किस रगमें थे। उनका कविता-पाठ कुछ लोगोंके लिये 'अरसिकेपु कवित्व निवेदन' और अन्य कुछ लोगोके लिये 'बत्तखोके सामने मोती बखेरना' प्रतीत हो रहा था। सभापति पंडित माखन लाल चतुर्वेदी सभाको सयत रखनेमे प्रयत्नशील थे। उन्हें वार-वार जनताको अपने और वक्ताओके अमूल्य समयका ध्यान दिलाना पडता था। एक पंजावी ढगेसे न रहा गया। बोला— सभापतिजी, जनताको समयका ख्याल रखनेके लिये कहा जा रहा है, जरा अपने कवियोकी ओर भी देखें—क्या अल्लल-जल्लल सुना रहे है। शब्द ठीक यही न भी रहे हो किन्तु उनके भीतरका विष इन वाक्योसे भी अधिक तीव्र था। श्रद्धेय चतुर्वेदीजीको मैने वहुत बार बोलते सुना है। किन्तु उस दिन उस पंजावी लडकेके रिमार्कने तो जैसे साहित्य-देवताको हिला ही दिया। उस दिन चतुर्वेदीजीके मुँहसे पंजावकी गैरजिम्मेदार तरुणाईको ऐसी जोरकी फटकार सुननेको मिली कि वह उसे कभी न भूलेगी। वह 'फटकार' न थी; वह थी साहित्य-देवता द्वारा की गई 'निराला' की पूजा। काश! चतुर्वेदीजीका वह सक्षिप्त भाषण कहीं रिकार्ड हो गया होता।

निराला जीके अल्हड़पनके अनेक किस्से उनके मित्रोको ज्ञात हैं। सुना है एक दिन जब महापंडित राहुल साकृत्यायन डा० उदय नारायण त्रिपाठी के घरमे उनकी चारपाई पर बैठे कुछ लिख-पढ रहे थे तो निरालाजी पहुँचे और जाते ही बोले— आज मै आपको अपनी कविताएँ सुनाने आया हूँ। राहुलजी लिखना-पढना बन्द कर कविता सुननेमे तल्लीन हो गये। घंटो निराला सुनाते रहे और राहुलजी सुनते रहे। 'श्रोता वक्ताच दुर्लभ।' शायद ऐसे ही निराला यकायक उठे और बोले—मै कृतार्थ हो गया। आपने मेरी कविता सुन ली।

क्या सचमुच एक 'एमर्सन' को समझनेके लिये 'एमर्सन' की ही जरूरत होती है!

मैं उस भारतीय–प्रतिभाको जो हमारे रूढ़िवादकी चतुर्मुखी श्रृङ्खलाओंको तोड़नेके प्रयत्नमे स्वयं टूट-टूट गई है, शतश. प्रणाम करता हूँ।

कुल्ली भाट

अशोक शर्मा

सन् '३८-'३९ के जाडेमे निरालाजी अपनी मित्रमंडलीमें वह कथा नाटकीय ढंगसे सुनाया करते थे जो पहले धारावाहिक रूपसे 'माधुरी' में और फिर पुस्तक रूपमें 'कुल्ली-भाट' के नामसे प्रकाशित हुई। ससुरालके दोस्त कुल्लीका इसी समय देहान्त हुआ था। उनके जीवनमे निरालाजीने कुछ वाते ऐसी देखीं जिनपर लिखना जरूरी समझा। प्रगतिशील साहित्यकी भी इधर काफी चर्चा रहती थी। निरालाजीने इस स्केचमें यह दिखाया कि साधारण मनुष्य भी अनेक कमजोरियाँ होते हुए समाजका वहुत बडा उपकार कर सकते हैं और महापुरुष कहलानेवाले लोग चरित्र पर नकली सफेदी किये हुए समाजका उपकार करना तो दूर सच्चे सेवकोंका साथ भी नहीं दे सकते। समर्पणमे लिखा है कि इसके योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्यमें नहीं मिला, इसलिए यह कार्य स्थगित रक्खा गया है। पुस्तकमें स्वयं लेखकके जीवन पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है लेकिन वर्णनमें विशेषता है तो यह भी एक गुण माना जायगा। यह कहकर निराला जी ने इसका समर्थन किया है। वहुतसे लोगोंपर जहाँ-तहाँ व्यङ्ग किया गया है। जो नाराज होगा वह अपनी ही कमजोरी सावित करेगा, यह कह कर निरालाजीने इन विरोधियोंका मुंह पहलेसे ही बंद कर दिया है।

पहले उन्होने जीवन-चरित्र लिखनेवालोपर ही व्यङ्ग किया। यह लोग जीवन से चरित ज़्यादा देते है। चरित शब्दका प्रयोग चरित्तरके अर्थमें हुआ है। महापुरुषोंने अपने हाथसे अपनी जीवनियॉ लिखी हैं, उनके लिखनेसे मालूम होता है कि वे पराधीन देशके रहनेवाले हैं। इनके महान् महान् कृत्योको देख कर बंबईके सिनेमा-स्टारोंकी याद आती है जो दीवाल चढ़नेकी करामात दिखाया करते हैं। ऐसी स्थितिमे वह कुल्लीका चरित लिख कर एक आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इनके जीवनके महत्वको समझता, 'ऐसा अब तक एक ही पुरुष ससारमे आया, पर दुर्भाग्यसे अब वह ससारमे रहा नहीं—गोर्की,' लेकिन गोर्की भी जीवनसे जीवनकी मुद्राको ज़्यादा देखता था, इसलिए कुल्लीके जीवन-चरित लिखनेकी योग्यता निरालाजीमें ही सिद्ध हुई। लेकिन पहलेसे ही आशंका है कि हिन्दीके पाठकोको सतुष्ट करनेमें सफलता न मिलेगी, यही वीस सालका अनुभव है।

निरालाजी उन दिनोकी याद करते हैं जब सोलहवॉ साल पार किया था और लोग कहते थे अब बबुआ नहीं है, गौना करा दो। प्लेगके दिनोंमें गौना हुआ। और गॉवके वाहर एक झोंपड़ेमे प्रथम मिलन हुआ। पॉच दिन वाद विदा होने पर गवहीं का वुलावा आया। पिताजीने तिगुना खाने और रोज रूहकी मालिश करानेका उपदेश देकर पुत्रको बिदा किया।

आगे चलकर कुल्लीकी पाठशालामे अछूत लड़कोका वर्णन है; मानो उसीकी तुलना करनेके लिए आरम्भमें शातिपुरी धोती और बंगाली ठाठका वर्णन किया गया है। ठीक दोपहरको स्टेशनकी तरफ चले, तो लू का ऐसा झोंका आया कि सारे परदे एक साथ ही हट गए। रहस्यवादियोकी तरह ज्ञान हो गया। 'वह प्रकाश देखा कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है, रविबाबूको आरामकुर्सी पर दिखा, हजरतमूसाको पहाड़ पर, मुझे गलिहारेमें।' बंगालकी वीरता और प्रेमके कारण लूके विरोधमें भी पैर चढ़ते गए। बैलगाड़ियोके ढर्रेमे पैर फिसल जानेसे अक्षरश धूल चाटनेकी नौबत भी आगई। मुँहकी क्रीम पर पाउडरकी कसर पूरी हो गई। ककड़में ठोकर लगनेसे जूतेने मुँह फैला दिया, छाता उलट कर कमल बन गया। लोन नदीके किनारे बेर बबूलोंके वनमें आए जिससे 'बारह कुँअर बनौधे केर' प्रसिद्ध हुए थे। कॉटोने दामन थाम लिया, धोती छप्पन छुरी हो गई। स्टेशनके सामनेका मैदान मिला तो गाडीकी आवाज सुनाई दी। बाबू बन कर ससुराल चले थे, दौड़ना अभद्रता थी। फिर भी बगल में छाता हाथमे जूते, चार वजेकी चटकती धूपमें एक मीलका भूभुलवाला मैदान पार किया। डलमऊ स्टेशन उतरने पर तेलसे जुल्फें तर किये हुए दुपलिया टोपी, ऐंठी मूँछे, चिकनका कुरता, हाथमें बेत लिए कुल्लीने स्वागत किया और इन्हे उस शुभ दृष्टिसे देखा जो 'सुंदरी से सुंदरी पर पड़ती है।' सासजीको कुल्लीके एक्केकी बातका पता लगा तो अपने दामादके लहराते हुए बंगाली वालोंको संशयसे देखने लगी। रात्रिमें संसारके छंदोंको परास्त करती हुई श्रीमतीजी भीतर आईं और छूटते ही प्रश्न किया—तुम कुल्लीके एक्के पर आये हो?'

दूसरे दिन कुल्ली क़िला दिखाने ले गये। सासुजीने गुप्तचरकी तरह चंद्रिका नाईको साथ लगा दिया था लेकिन उन्होंने उसे रूह लेनेके बहाने टरका दिया। रनिवास, मसजिद, ड्योढिया वगैरह दिखानेके बाद बारहदरीकी सीढी पर बैठ कर कहा, 'दोस्त, क्या हवा चल रही है।' फिर गानेका आग्रह किया। गलत ताल और सम पर सर हिला कर भी कुल्लीने अपनी तारीफसे दोस्तको खुश कर लिया और अपने मकानको पवित्र करनेके लिए कहा। पान खिला कर बोले, 'पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हें। तुम्हारे होठ भी गजबके हैं। पानकी बारीक लकीर रचकर क्या कहूँ, शमशीर बन जाती है।' ससुरालका संबंध लगा कर कविवर प्रसन्न हुये। घर आकर रूहकी मालिश कराई और सासुजीको यह पूछने पर विवश किया, 'तुम्हारे पिताजी तनख्वाह कितनी पाते हैं ?' रातमें श्रीमतीजी की तुलना मछुआइन से की और वह रुष्ट होकर चली आईं। कुल्ली फिर अपने घर ले गये और मिठाई-पान खिला कर अन्दर गालीचे बिछे पलँग पर बिठाया। इत्रकी शीशी दिखाने पर 'मै अज्ञात यौवन युवककी तरह कुल्लीको देखने लगा। फिर काफी हिचकिचाहटके बाद कुल्लीने कहा मै तुम्हे प्यार करता हूँ। परन्तु कुल्ली अपना अर्थ न समझा सके और अज्ञात यौवन युवक उन्हें नमस्कार करके बाहर चला आया।'

कुल्लीसे जोड बराबर छूटे, लेकिन खड़ी बोलीके मैदानमें श्रीमतीजीने परास्त कर दिया। जिस समय उन्होंने स्त्रियोकी भीडमे 'श्रीरामचंद्र कृपालु भजमन हरण भवभय दारुणम्' गाया तो मालूम हुआ कि गलेमे मृदंग बज रहे हैं। सगीत और साहित्य पर उनका यह अधिकार देख कर, 'मेरा दम उखड गया।' इस पराजयसे लज्जित होकरके बिस्तरा बॉध कर कलकत्ते जानेकी तैयारी की।

उसके बाद इंफ्ल्युएंज़ाका प्रकोप हुआ जिसमे दोनो ओरके परिवार नष्ट होगये। फिर रियासतमे नौकरीकी और उसे भी छोड कर साहित्य-सेवामें लगगये। लेख वापस आनेपर कोरियोंके यहा बुनाई सीखने जाने लगे। लेकिन उन्होने भी कहा, महाराज होकर यह काम क्या करोगे, जाकर कहीं भागवत बॉचो। चारों तरफ निराशाकी अग्नि जल रही थी इसलिए जब कुल्लीने कुछ उपदेश देनेके लिए कहा तो उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया, गंगामें डूब जाइये।

कुल्ली एक मुसलमान महिलासे प्रेम करने लगे। लेकिन समाजमे कोई सहारा न था। कविवरने उसे ले आनेकी सलाह दी। समाजसे बहिष्कार हुआ; कुल्ली अछूतोके लडकोको पढाने लगे। कुल्लीने अपनी पाठशालामें कविवरको आमंत्रित किया। गढहेके किनारे कुटीनुमा बॅगलेके सामने टाट बिछाये, श्रद्धाकी मूर्ति बने अछूत लडके बैठे थे। कुल्ली आनन्दकी मूर्ति, साक्षात् आचार्य। निरालाजी इस अछूत वर्गके पीढ़ी-दर-पीढी उत्पीडन का ध्यान करके लिखते हैं, 'इनकी ओर कभी किसीने नहीं देखा है। ये पुश्तदरपुश्तसे सम्मान देकर नत मस्तक ही ससारसे चले गए हैं। संसारकी सभ्यताके इतिहासमें इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद, थे। रामायण महाभारत इनकी कृतियाँ हैं, अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन पृथ्वीराज इनके देशके है। फिर भी ये थे और हैं।'

एक बार 'देवी' को देखकर छायावादी अंहकार नष्ट हो गया था इस बार फिर वही छुटपन सवार हो गया। सदियोके इस उत्पीड़नके सामने संस्कृति, कला, साहित्य, सब खोखला जान पड़ा। उन्हे कुल्लीके महत्वका ज्ञान हुआ जो इनको उठाकर अपनी मनुष्यताके धरातल तक लाया। अपनी पुरानी कविता वैभव और विलासकी चेरी मालूम हुई; युग-प्रवर्तक और क्रान्तिकारी होनेका दावा दम्भ मालूम हुआ। उन्होने लिखा है: 'अधिक न सोच सका! मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने जंबुकोमें वह सिंह है. ..ये इतने दीन दूसरेके द्वार पर नहीं देख पड़ते? मै बार-बार ऑसू रोक रहा था। इसी समय बिना स्तवके, बिना मंत्रके, बिना वाद्य, बिना गीतके, बिना बनाव बिना सिंगारवाले पासी, धोबी और कोरी दोनोमे फूल लिये हुए मेरे सामने आ-आकर रखने लगे। मारे डरके हाथ पर नहीं दे रहे थे कि कहीं छू जाने पर मुझे नहाना होगा। इतना नत, इतना अधम बनाया है मेरे समाजने उन्हे लज्जासे मै वहीं गड़गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती समझती है। वहॉ चालाकी नहीं चलती। ओफ कितना मोह है। मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ!—फिर क्रानिकारी!!!'

सत्यसे यह प्रेम, कटु सत्य कहनेका यह साहस निराला ही में है। यही उनके व्यक्तित्वको महान् बनाता है जब काल्पनिक साहित्यको, वैभव और विलासकी वन्दना कह कर उसका तिरस्कार करते हैं। एक नये युग, एक नयी साहित्यिक धाराका स्पष्ट स्वर इन वाक्योमें हमे सुनाई पड़ता है।

समाजसे वहिष्कृत, किसी भी बड़े नेतासे सहारा न पाकर कुल्ली जैसे तैसे पाठशाला का कार्य चलाते रहे। उनके जीवनका करुण अत हुआ। मृत्युके उपरान्त कोई अतिम क्रिया करानेके लिये तैयार न हुआ। निरालाजीने स्वयं जनेऊ धारण करके मंत्र पढकर सब कार्य कराये।

कुल्ली भाटका व्यङ्ग एक पूरे युग पर है। एक ओर बंगालकी मध्यवर्गीय सस्कृति है, रहस्यवादकी बाते हैं, साहित्य और सगीतकी चर्चा है, दूसरी ओर समाजके अछूत हैं, उच्च वर्गोंकी असहनशीलता है, हिन्दू-मुसलमानका तीव्र भेद-भाव है, बड़े-बडे नेताओंमे सच्ची समाज सेवाके प्रति उपेक्षा है। कुल्लीकी पाठशालाकी ठोस जमीन पर मनोहर कल्पनाये चूर हो जाती हैं। यहॉ वह सत्य दिखाई देता है जिससे साहित्य और समाजके नेता ऑखे चुराते है। जलके ऊपर सतोषकी स्थिरता जान पड़ती है, लेकिन नीचे जीवनको नाश करनेवाला कर्दम छिपा हुआ है। निरालाजीने व्यङ्गकी लाठीसे इस शान्त जलको एकाएक खभो दिया है। उन्होने लोगोको विवश किया ह कि वे मनुष्य द्वारा मनुष्यके इस उत्पीड़नको देखे। चंद्रिका, कुल्ली, सासुजी, अपने पिता और स्वयं अपना चित्रण बडे कौशलसे किया है, पात्रोमें वैसी ही सजीवता है जैसी बैसवाड़ेके वर्णनमे चित्रमयता। भाषा सरल और सधी हुई है। यथार्थवादी रचनाओंमें अपने व्यङ्ग और हास्यसे निरालाजीने एक नई परम्पराका श्रीगणेश किया है।

अभिवादन

केदारनाथ अग्रवाल

निरालाजी ! आप पचासके हो गये, अब आपका इक्यावनवाँ चला।
मैं नतमस्तक हो कर आपका सहस्र-बार अभिवादन करता हूँ।

मेरा यह अभिवादन मेरे हृदयका अभिवादन है, मेरे मस्तिष्कका अभिवादन है, कंठका अभिवादन है, और मेरे रक्तका, मेरे हर्षका, मेरे प्रेमका और मेरे रोम-रोमका अभिवादन है।

निरालाजी ! आप जीवन-संग्रामके अपराजित, अपरास्त, विक्रमी योद्धा हैं। क्षुधित रहकर भी, पीड़ित रहकर भी आपने अहरह आर्थिक अभावों और कटु परिस्थितियोंसे मल्लयुद्ध किया है। आपने घात-प्रतिघात सब सहे हैं। आप घायल हुए हैं, आपने शोणित बहाया है। आप अविचलित ही रहे हैं। आलोचकोंने भी लाठियोंसे आपकी हड्डियोंको चरमरा कर तोड़ना चाहा था—आपको मारना चाहा था, किन्तु न तोड़ सके—न मार सके। आपकी आयु अधिक है ! मैं आपकी वंदना करता हूँ।

निरालाजी ! आपने वाणीकी सफल तपस्या की है। आपको उसमें परम साहित्यिक-सिद्धि मिली है। इसीसे आपकी रचनाओंमे भारतीय जीवन है, जीवनका रस है, जीवनके प्राण हैं और जीवनका, युगका संदेश है। अभी क्या, आगामी कलमे भी आपकी ये रचनायें जनताको प्रिय रहेंगी। मैं इनकी मुक्त कंठसे सराहना करता हूँ।

निरालीजी ! सच मानिये, यदि आप सम्राट होते तो मै आपका अभिवादन न करता; यदि आप कुबेर होते तो मैं आपका अभिवादन न करता; और यदि आप संसारके सर्वस्व होते तो मैं आपका अभिवादन न करता; किन्तु आप मेरे ग़रीब देशकी जागृत और अनूठी प्रतिभा हैं, इस हेतु मैं आपको समस्त रंग-बिरंगी प्रकृति के साथ, सब दिग्वधुओंके साथ, मधुरसे मधुर गान-गुंजारके साथ, इस शुभ अवसर पर, पुष्पाञ्जलि भेंट करता हुआ, बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

‘निराला’ जी की जीवन-झाँकी

भारतीय काव्याकाशके शीतलच्छाय सूर्य श्री० सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ की अदम्य, तेजस्विनी, गंभीर मूर्ति एक साथ ही जीवन-संग्रामके अजेय सेनानी, महामनीषी तथा तपस्विताकी सर्वथा निष्कलुष ज्योतिकी झाँकी देकर हमें मंत्रमुग्ध कर लेती है। सरलता, उदारता और सहिष्णुताका जैसा एकत्र बेजोड समन्वय हम उनमें पाते हैं, वैसा ही त्याग, स्वाभिमान और पांडित्यका विचित्र सामञ्जस्य। आजके भयंकर अर्थ-मोहके युगमें इस कवि-मनीषीने एक वार नहीं, अनेक वार ‘विष्णुजित् यज्ञ’ किया। पासके हजारों रुपये ही नहीं, शरीरके वस्त्र तकका दान देकर मिट्टीके पात्रों से वर्षों तक प्रसन्नतापूर्वक राष्ट्रके प्राणोंको गति देनेमे तन्मय रहते ‘निराला’ जी को अनेक वार देखा गया है। प्राणमयी कलाका उन्मुख क्रांति-पथ स्वीकार करनेके कारण निरालाजीको अपनी प्रगतिके लिए जबर्दस्त होड़ लेनी पड़ी है।

निरालाजीका जन्म महिषादल-राज्य मेदिनीपुर (बंगाल) में सं० १९५३ विक्रमीय वसंत-पञ्चमीके दिन हुआ था। आपके पिता श्री० रामसहाय त्रिपाठीका अपना घर उन्नाव जिलाके गढाकोला नामक गाँवमे है। महिषादल राज्यमें नौकरी करते हुए वे वहीं अपने परिवारका भरण-पोषण करते थे। छोटी अवस्थासे ही निरालाजी कुश्ती लड़ने तथा अश्वारोहण आदि में प्रवीण थे। संगीत-कला का अभ्यास उन्होंने राजकीय संगीताचार्योंसे किया था। शैशवसे ही बंगला-साहित्यसे संपृक्त होनेके कारण अंग्रेजी प्रवेशिका कक्षामें पढ़ते समय ही वे बंगलामे कवितायें लिखने लगे थे। इसी समय उनकी रुचि दर्शनकी ओर हुई, जिसके सम्यक् परिज्ञानके लिए उन्होंने संस्कृत-साहित्य का स्वाध्याय किया। १५ वर्षकी अवस्थामें ही वे फिट ५।११ इंचकी अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँच गये थे।

१९१९ में योरोपीय महायुद्ध समाप्त होते ही देशके अनेक भागोमें बड़ी भयंकर बीमारी फैली, जिसकी ज्वालामे उनका पारिवारिक जीवन अग्नि-सात् हो गया और निरालाजीको प्रारम्भसे ही जीवन-संघर्षका सामना करना पड़ा। उदार कर्मठता तथा विचारोंमें अजीब दृढ़ता शैशवसे ही उनकी विशेषता थी। दार्शनिक-स्वाध्याय तथा परिस्थितियोने उसे और भी प्रौढता दी। जिन विदुषी संगीत-प्रिय जीवन-संगिनी मनोहरा देवीने हिन्दीमे स्वरोंकी साधनाकी ओर इन्हें आकृष्ट किया था, उन्होंने भी २२-२३ वर्षकी अवस्थामें इस वीरव्रती कलाकारका साथ छोड दिया। भावुक दार्शनिक अब निर्बाध साहित्यिक-जीवनका उन्मुख आह्लाद पानेको कटिबद्ध था। राज्यका सीमा बन्धन उसे अखरने लगा। फलतः, विपन्न परिस्थितिमें भी राज्यकी नौकरी, जो आर्थिक

दृष्टिसे अच्छी थी, उन्होंने त्याग दी। इसी समय कलकत्ताके श्रीरामकृष्ण मिशनके प्रधान केन्द्रसे प्रकाशित मासिक पत्र 'समन्वय' के संपादनके लिए निरालाजीके परम हितैषी आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीने उन्हें कलकत्ता भेजा। यहीं (श्रीरामकृष्ण मिशन बेलूर मठमें) इन्होंने रामकृष्ण और विवेकानन्दके दार्शनिक सिद्धान्तों और नवीन जीवन-दृष्टिका अध्ययन और अनुभव किया; किन्तु संन्यासी जीवनकी ऐकान्तिकता यहाँ भी अवरोध ही बनी।

कुछ ही समयके उपरान्त वे कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले हिन्दी पत्र 'मतवाला' के सम्पादकीय विभागमें काम करने लगे। निरालाजीकी नवजीवनमयी रचनाओंसे 'मतवाला' चमक उठा और उसे हिन्दी-व्यापी ख्याति प्राप्त हुई। इस प्रकार बंगालमें कलाकारके जीवनके बत्तीस वसन्त व्यतीत हुए। बंगला साहित्यके शरद्, बंकिम और कवीन्द्र रवीन्द्र आदिका साहित्यिक परिचय प्राप्त हुआ। संगीत और अंग्रेजी साहित्य के अभ्यासमें प्रौढ़ता आई।

निरालाजी की बहुमुखी प्रतिभाकी विलक्षणता काव्य, कहानी, उपन्यास और निबन्ध आदि मे सर्वत्र निजी शैली तथा स्वतंत्र मौलिक चिन्तनका संकेत करती है। काव्यकी शैलीमें प्रगीत, मुक्तवृत्त और प्रबन्ध, सभी प्रकारके सफल प्रयोग आपने किये। कलाकी इतनी सजीव, स्वस्थ और सुन्दर व्यंजना करते हुए भी कलाकारकी निस्संग सजगता सर्वत्र स्पष्ट है। इसीलिए निराला राष्ट्रीय प्राणोंके लिए ज्योति-स्तंभ बनकर आजकी व्याकुल मानवताके पथ-प्रदर्शक बन सके हैं। उनमें अतृप्तिकी प्रतिक्रियात्मक आकुलताकी क्षीण रागिनी नहीं है, ओजस्विता और उद्दाम प्रखरताकी मंद्र ध्वनि व्याप्त है। निरालाजीकी व्यंग और विनोदपूर्ण रचनाऐं भी उनके निर्लिप्त और प्रसन्न व्यक्तित्वका परिणाम हैं।

कलकत्तासे लौट आकर वे कुछ दिन लखनऊ रहे तथा कुछ दिन गॉव पर। पुन. लखनऊ आकर प्राय स्थायी रूपसे वहीं रहने लगे। कुछ समय तक लखनऊकी 'सुधा' पत्रिकासे भी उनका सपर्क था। किन्तु किसी प्रकारकी परतंत्रता स्वीकार न होनेके कारण अततः उन्हें अपनी पुस्तक-रचना पर ही आश्रित रहना पड़ा। अपनी पुस्तकोंके संबंधमे भी उन्होने निपुण व्यावसायिक नीतिका अनुसरण नहीं किया। कुछ वर्षों पश्चात् जब कॉंग्रेसका राष्ट्रीय मंत्रिमंडल प्रातमे प्रतिष्ठित हुआ, तब राष्ट्रीयतावादी लेखकोंकी और भी उपेक्षा हुई, जिससे निरालाजीको कठिन परिस्थितियोका सामना करना पड़ा। किन्तु वे अडिग रहे और साहित्यके आत्मसमान पर लेशमात्र भी बल न लगने दिया।

आध्यात्मिक स्तरके व्यक्तित्वके सबल समर्थक होते हुए भी सामाजिक जीवनकी प्रगतियोंके प्रति निरालाजी प्रारभसे ही जागरूक रहे हैं। इसीलिए समाजवादी सिद्धान्तोके साथ सास्कृतिक ज्योतिका सामंजस्य उनकी कला-सृष्टिमे सर्वत्र मिलता है।

सचासी

उन्हें अपनी जीवन-दृष्टि परिवर्त्तित करनेकी आवश्यकता नहीं हुई किन्तु काव्यमे नव नव प्रयोगोकी ओर वे सदैव अग्रसर हुए हैं।

निराला हिंदी संसारके आत्म-संमानके प्रतीक हैं। अनेक बार संमान और पुरस्कारके अवसरोंको निःस्पृह होकर उन्होंने त्याग दिया। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे देशके महान् नेताओके समक्ष आपने निर्भीकतापूर्वक हिन्दी भाषा और साहित्यकी अनिवार्य प्रगतिका समर्थन किया। फैजाबादके प्रातीय हिंदी साहित्य-समेलन के अवसर पर हिंदी साहित्य तथा साहित्यकारोंके प्रति राजनीतिज्ञोंकी अवज्ञा-नीतिका आपने खुला विरोध किया। इस अवसर पर आचार्य रामचंद्र शुक्लने उनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की थी।

विश्वके प्रथम महायुद्धकी भीषण दानवी-लीलाको कलाकार भूल भी नहीं सका था, कि उससे भी बढ़कर दूसरा नग्न ताण्डव उसके हृदय-चक्षुके सामने उपस्थित होकर चला गया। असंख्य निरपराध जनता महासमरकी ज्वालामे भस्म हो गई। पर दूसरोंकी कमाई पर शेखी बघारनेवाले संसारके बड़े-बड़े कूराक्ष आज भी अपने उसी पुराने दॉव-पेंचका कौशल दिखा रहे हैं। इधर लाखो प्राणवान् नौजवानोंकी वलि देकर तथा बार बार आश्वासनका मंत्र जपकर आज भी हमारा राष्ट्रीय जीवन विवशताके ऑसू बहा रहा है। इस प्रकारकी भयंकर मोह-निद्राके कारण आज हमारे देशमें साधनाशील कवियों, उच्चकोटिके साहित्यकारो और आदर्शप्रिय लेखकोंको पंगु बना देनेवाली परिस्थितियॉ मौजूद हैं। भाषाके प्रश्नको उलझनमें डालकर यथा स्वतंत्र राष्ट्रीय-शिक्षाके आदर्शकी उपेक्षा कर राष्ट्रीय तथा जन-जागरणकी समस्याको हमारे नेता सुलझा सकेंगे, यह संदेहास्पद है। लगातार तीस वर्षों तक क्रान्तिकारी कलाकारका कठोर जीवन व्यतीत करते हुए समाज तथा संस्कृतिके क्षेत्रोमें फैली हुई दुर्नीतियोंसे मोर्चा लेते-लेते निराला जी का बलिष्ठ शरीर और पौरुषवान् मष्तिष्क भी श्रान्त हो चला है।

इधर कुछ दिनोंसे निराला जी प्रयागमें रहने लगे हैं किन्तु उनकी देख-रेख के लिए वहॉ भी कोई व्यक्ति नहीं हैं और उनकी अवस्था क्रमशः रुग्ण होती जा रही है। समुचित परिचर्या और अनुकूल वातावरणके अभावमे निराला जी के श्रान्त मष्तिष्कमें विक्षेपके लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

इस युगान्तरकारिणी समर्थ प्रतिभाको खोकर हम महान् सांस्कृतिक क्षति उठायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु इस आपन्न संकटके निवारणार्थ हमारा कर्तव्य क्या है? हम क्या कर रहे हैं? इन प्रश्नों का उत्तर हमे ही देना है। *

---

* श्री राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी, के सौजन्यसे प्राप्त।

★

निराला-साहित्य

विगत पचास वर्षोंके जीवनमें निराला जी ने हिन्दी जगतको जो उच्चकोटि की मौलिक तथा स्थायी रचनाएँ प्रदान की हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है

काव्य

१— अनामिका	('मतवाला' से निकली हुई)
२— परिमल	(गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)
३— गीतिका	(भारती-भण्डार, प्रयाग)
४— तुलसीदास	,,
५—अनामिका (नवीन)	,,
६—कुकुरमुत्ता	(युग-मन्दिर, उन्नाव)
७—अणिमा	,,
८—बेला	(हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, प्रयाग)
९—नये पत्ते	,,
१०—अपरा (काव्य-संग्रह)	(साहित्यकार संसद, प्रयाग)

उपन्यास

१—अप्सरा	(गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)
२—अलका	,,
३—प्रभावती	(किताब महल, प्रयाग)
४—निरुपमा	(लीडर प्रेस, प्रयाग)
५—चोटी की पकड़	(किताब महल, प्रयाग)
६—काले कारनामे	(केसरवानी प्रेस, प्रयाग)

अनुवाद

अ वंकिम ग्रन्थावली के ११ ग्रन्थ :

१—आनन्द मठ	(इण्डियन प्रेस, प्रयाग)
२—कपालकुण्डला	,,
३—चन्द्रशेखर	,,
४—दुर्गेशनन्दिनी	,,
५—कृष्णकान्त का विल	,,
६—युगलाङ्गुलीय	,,
७—रजनी	,,
८—देवी चौधरानी	,,
९—राधारानी	,,
	,,

नयाओ

१०–विषवृक्ष (इंडियन प्रेस, प्रयाग)
११–राजसिंह ,,
१२–महाभारत (गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ)

आ. श्री रामकृष्ण विवेकानन्द-साहित्य :

१–परिव्राजक (श्री रामकृष्ण सेवाश्रम, नागपुर)
२–श्रीरामकृष्ण-कथामृत ,,
३– ,, ,, ,,
४– ,, ,, ,,
५– ,, ,, ,,
६–विवेकानन्दजीके व्याख्यान ,,
७–राजयोग (अप्रकाशित)

कहानी-संग्रह

१–लिली (गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)
२–चतुरी चमार (किताब महल, प्रयाग)
३–सुकुल की बीवी (लीडर प्रेस, प्रयाग)
४–सखी (गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)

रेखा-चित्र

१–कुल्ली भाट (गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)
२–बिल्लेसुर बकरिहा (किताब-महल, प्रयाग)

निबंध-संग्रह

१–प्रबन्ध-पद्म (गङ्गा-पुस्तक-माला, लखनऊ)
२–प्रबन्ध-प्रतिमा (लीडर प्रेस, प्रयाग)
३–चाबुक (कला-मंदिर, प्रयाग)

समीक्षा-पुस्तक

१–रवीन्द्र-कविता-कानन (निहालचन्द एण्ड सन्स, कलकत्ता)

नाटक

१–समाज (अप्रकाशित)
२–शकुन्तला (अप्रकाशित)

जीवनियाँ

१–ध्रुव (पापुलर-ट्रेडिङ्ग कम्पनी, कलकत्ता)
२–भीष्म ,,
३–राणा प्रताप ,,

[स्फुट

१–हिन्दी-बंगला-शिक्षा (पापुलर ट्रेडिङ्ग कम्पनी, कलकत्ता)
२–रस-अलंकार (लहरिया सराय, पटना)
३–वात्स्यायन कामसूत्र (निहालचन्द एण्ड सन्स, कलकत्ता)
४–तुलसीकृत रामायण की टीका (गंगा-पुस्तक-माला, लखनऊ)

★

आलोचना

'बेला' और 'नये पत्ते'

प्रभाकर माचवे

निराला अपनी हर किताबके साथ कुछ 'निरालापन' लेकर आये: 'परिमल' मे मुक्तछंद; 'गीतिका' मे नये ताल, 'तुलसीदास' में रहस्यवादी खंडकाव्य, 'अनामिका' मे 'रामकी शक्ति-पूजा', 'अणिमा' में 'विजयलक्ष्मी पंडितके प्रति', 'बेला' में गजलें, 'नये पत्ते' में आधुनिकतम शैलीकी व्यंग-हास्यभरी रचनाएँ।

'बेला'[1] में जो छंद प्रयुक्त हैं, उर्दूकी बहरोंके वजनपर जो 'वर्ण-चमत्कार' निरालाने कर दिखाया है, वह सभी जगह सफल नहीं है। परंतु मराठी कवितामें जिस प्रकार 'माधव ज्यूलिन्' (जो कि स्वयम् फ़ारसीके अध्यापक थे) ने उर्दू छंद-शास्त्रसे 'गजलों' के अनेक प्रकार लाकर 'गजलांजली' लिखी, उसी प्रकार निरालाका यह प्रयोग है। निरालाकी संगीत-वृत्ति सूक्ष्म होनेसे गजलके वे वार्णिक रूप जो हिंदीमें पहिलेसे ही 'भुजंगी' या 'मंदारमाला' या 'चामर' छंदके रूपमें प्रचलित थे, निरालाने नहीं लिये। रुबाई भी इसीलिये जैसे छोड़ सी दी। उर्दू छंद गजल, गुजराती कवि 'कलापी' ने भी लिये हैं–'ज्या ज्या नजर मारी ठरे, यादी भरी त्यां आपनी!' और उसी छंदमें 'माधव ज्यूलियन्' की प्रसिद्ध उक्ति:

'येथें स्थिरेना चारुता, बांधू कशाला गेह मी
हुडकीत चारू गभीरता, हिंडेन भूवा नेहमी'

और तीन अंतिम मात्रा कम कर निरालाका यह छंद (बेला, पृ. ८५)–

संकोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं,
छन्दों को विनिस्तार दिये जा रहा हूँ मै।

निराला की छन्दके मामलेमे इस प्रयोगशीलताकी तारीफ 'दिनकर' ने अपनी नई किताब 'मिट्टी की ओर' में पृ १११ से ११५ तक की है। 'दिनकर' के हीं शब्दोंमे 'छंदोबंधसे कविताको मुक्त करनेवालो मे निरालाजी सर्ववरेण्य है और हिंदी-साहित्यके इतिहासने इसका सुयश भी उन्हे ही दिया, जो योग्य भीं है। कारण चाहे जो भी हो, किंतु निरालाजीने छन्दके क्षेत्रमे जितना काम किया उतना उनके किसी भी समकालीन कविसे नहीं बन पड़ा। बदनाम तो निरालाजी इसीलिए हुए कि उन्होंने छन्दोंका बंधन तोडकर उसका निरादर किया, लेकिन किसीने अब तक भी यह नहीं बताया कि नये भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए छन्दोंका अनुसन्धान करते हुए उन्होंने कितने पुराने छन्दोका उद्धार तथा कितने नवीन छन्दोकी सृष्टिकी है। अपनी लय चेतनाके

---

१. बेला (कविता-सग्रह) रचयिता, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, प्रयाग।

बलपर बढते हुए उन्होंने तमाम हिंदी-उर्दू छन्दोको ढूंढ डाला है, तथा कितने ही ऐसे छंद रचे हैं जो नवयुगकी भावाभिव्यंजनाके लिए बहुत ही समर्थ हैं।...उर्दू छंदोंका परिष्कृत रूप निरालाजीकी अनेक कविताओंमें प्रकट हुआ है तथा वह सर्वत्र ही नवीनता, गाभीर्य और सगीतकी अलौकिकतासे पूर्ण है। छायावाद-युग में निरालाजी शायद अकेले कवि हैं, जिन्होंने हिंदीके प्राचीन छंद बरवैका प्रयोग सुंदरता के साथ किया है। निरालाजीके मुक्त छंदोमे कहीं कहीं हम एक ही स्थल पर रोला, राधिका, ललित, सरसी, बरवै और वीर सभी प्रकारके छंदोका प्रभाव एकत्र देखते हैं.. '

यह प्रशंसा इसलिए और भी अर्थवती है कि यह 'दिनकर' जैसे समकालीन कवि तथा प्रगतिशीलताको सर्वाशत. सही न माननेवाले आलोचककी कलमसे निकले हैं।

परंतु 'बेला' के सब प्रयोगोमें वे सफल नहीं हैं, जहाँ कान्शस रूपसे या सतर्कतासे प्रयोग करने वे गये हैं, सिर्फ वही। कहीं उर्दूकी बंदिश और तर्जे-अदामें वे बह गये हैं; कहीं कलात्मकतामे वे पंक्तियाँ ओछी पड गई हे; कहीं एक ही पंक्तिमे बहुत बडा अर्थ समा डालनेकी जल्दबाजीमे पंक्तियाँ दुरूह हो गई हैं। उदाहरणार्थ·

बदली जो उनकी आँखें इरादा बदल गया
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया
सारे दाव पेच खुले पेचीदगी आनेपर
यार गिरफ़्तार हुआ खूनके बहानेपर

ऐसी कई पंक्तियाँ हैं जो सीधी उर्दूमें शुमार हो सकती हैं, मगर इसी बीचमें कहीं शुद्ध हिंदीका एकाध कठिन शब्द आ जाता है और रचना अटपटी, हिंदी-उर्दू मेलवाली हो जाती है, जैसे

इतना ही रहे बयां, कहां तक हो और बयां
शाप को भी आना पड़ा पापके न जानेपर

यह ऐसे जान पडता है जैसे 'जोश' मलिहाबादी सिनेमाके लिये जान बूझकर हिन्दी गीत लिख रहे हो। हिन्दी और उर्दू कविताकी प्रकृतिमें ही भिन्नत्त्व है। जहाँ-जहाँ दोनोंकी खिचड़ी बनानेकी कोशिश की गई है, कविताकी 'हिंदुस्तानी' होगई है।

'आवेदन' में निरालाजीने कहा है, 'भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करनेकी आवश्यकता नहीं। देशभक्तिके गीत भी हैं।.. काव्यकी कसौटी भी है। पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जायगी, अगर उन्होंने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिये; यों आज भी व्रजभाषाके प्रभावके कारण अधिकारी जन तुतलाते हैं, खड़ीबोलीके गीत खुलकर नहीं गा पाते।' 'बेला' की कविताओंमें भी व्रजभाषाकी कोमलता तो अवश्य कहीं-कहीं है ही, चाहे तुतलाहट न हो।

'काले काले बादल छाये न आये, वीर जवाहरलाल' और 'आ रे गंगाके किनारे!' की धुनें स्पष्ट लोकगीतोंसे प्रभावित हैं। 'सोहे,' 'बौरे,' 'पुरवाई,' 'छन-छन,' 'महावर,' 'हिलोरें,' 'सरसाई,' 'मरोरो,' 'संवार,' 'सुरधुनी,'

'मनसिज,' 'अबल,' आदि सब व्रजभाषाकी ही तो देन है। अवश्य खड़ीबोलीके मुहावरोंका निरालाजीने बड़ी खूबीसे निर्वाह किया है। यह 'निर्वाह' 'चोखे चौपदे' या 'चुभते चौपदे' वाला हरिऔधी जबरदस्तीका निर्वाह नहीं है। यहां भाषाकी लचक कविताके रूपमे स्वभावत समा गई है। मुहावरेका ताना, भावोंके बानेसे बुन दिया गया है। परन्तु 'बेला' की गजलें फारसके कालीन न बन सकी। कुछ खुरदुरी आधी-भारतीय आधी-फारसी दरी ही बनकर रह गई हैं।

इस दोषको छोड, इस किताबकी कुछ अच्छाइयॉ बताता हूॅ। कहीं-कहीं दो चार पंक्तियोंमे निरालाने बड़ी दूरका और पतेका भाव भर दिया है। उदाहरणार्थ :

(१) ऑखे वे देखी हैं जबसे,
और नहीं देखा कुछ तबसे।
(२) नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।
(३) बातें चली सारी रात तुम्हारी ;
ऑखे नही खुली प्रात तुम्हारी।
(४) जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ आओ।
बेक किसानोंका खुलाओ,
सारी संपत्ति देशकी हो,
सारी आपत्ति देशकी बने...
(५) स्वर विवादी ही लगा, गाना सुनाना हो जहाँ
साथसे हर वक्तका उन्माद तू जब तक न कर।
(६) आँखके आँसू न शोले बन गये तो क्या हुआ?
(७) वेश-रूखे, अधर सूखे,
पेट भूखे, आज आये।

मगर यह रचना जिस कालमे की गई, तब युद्धकी विभीषिका विश्व पर छाई हुई थी, 'रुंडमुंडोंसे भी है खेत गोलोसे बिछाये।' और :

मैंने कला की पाटी ली है शेरके लिए,
दुनिया के गोलन्दाज़ोंको देखा, दहल गया।

'नये पत्ते'[1] निरालाकी किताबोंमें मुझे अनेक दृष्टियोंसे श्रेष्ठतर रचना जान पड़ती है, 'बेला' से, 'अणिमा' से भी। 'बेला' और 'अणिमा' में वे जैसे नई दिशा टटोल रहे हैं; पूरी तरह नहीं उतरे हैं। 'नये पत्ते' मे निरालाकी नई दिशाका निखार है। कुछ अशोंमें यह 'कुकुरमुत्ता' सग्रहकी व्यंग-हास्यमयी शैलीका परिष्कृत रूप है, अधिक सूक्ष्म, अधिक स-चोट!

दो तीन कविताएँ तो पुराने टाइपकी लंबी, वर्णनात्मक हैं, जो बहुत अच्छी नहीं। —'स्फटिक शिला' 'देवी सरस्वती,' 'युगावतार परम हंस रामकृष्ण देवके प्रति'।

---

१. नये पत्ते (कविता-संग्रह) रचयिता, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला; प्रकाशक हिन्दुस्तानी-पब्लिकेशन, प्रयाग।

परंतु इन रूढ विषयोंमें भी शैलीगत नवीनताका चमत्कारीपन आ ही गया है जैसे स्फटिक शिला में निरालाके कल्पना लोकमें बार-बार आनेवाली सद्यस्नाता जिसका भव्य-कोमल रूप रवींद्रनाथकी विजयिनीके अनुवादमें—देखिए तटपर नामक कविता 'अनामिका' में; और वीभत्स परिहासमय रूप 'खजोहरा'में व्यक्त हुआ है। वही सद्य. स्नाता चित्रकूटके दर्शनोपरान्त गंगातटपर उन्हें इस रूपमें दिखाई देती है; अंतिम दो पंक्तियोंमें निरालाकी आराध्या सीताका ध्यान आना बहुत मार्केका है—कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता :

वर्तुल उठे हुए उरोजोंपर अड़ीथी निगाह
चोंच जैसे जयन्तकी, नहीं जैसे कोई चाह
देखनेकी मुझे और
कैसे भरे दिव्य, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम रामकी,
कैसे दिये हैं दर्शन।

गाड़ीसे ऊँचे नीचे जानेका बहुत अच्छा वर्णन 'स्फटिक शिला' में हुआ है मगर विस्तार अनावश्यक है। 'देवी सरस्वती' में वसंत और शरत् ऋतुओंके खेतोंके वर्णन मनोरम हैं। विवेकानंदके अनुवाद और रामकृष्ण परमहंस वाली कविताएँ साधारण हैं क्योंकि रूढ़ शैलीमें हैं। 'कैलाशमें शरत्' एक अभिनव दिवास्वप्न है, जिसमें अपचेतनको काफ़ी स्थान दिया गया है। यहाँ निरालाकी दूसरी बार-बार आनेवाली उपमा मिलती है—'पत्थरोंको फोड़कर मुक्तधारा बह रही है।'

बची हुई छोटी कविताओंमें प्रायः सभी सामाजिक-राजनैतिक गर्भिताशय लिये हुए हैं। 'रानी और कानी' मास्को डायलाग्ज' 'खुश-खबरी' 'दगाकी' 'गर्म पकौड़ी' 'प्रेम संगीत,' आदि 'नान-सीरियस'[1] ढंगसे 'बैथॉस'[2] और 'ग्राटेस्क' (काव्यगत असुंदर) का सहारा लेती हुई चलती हैं; ये सभी कविताएँ मुझे बहुत ही मार्मिक जान पड़ी, उनकी विस्तारसे अच्छाइयाँ नीचे बताऊँगा। शेष 'थोड़ोंके पेटमें बहुतोंको आना पड़ा', 'राजेने अपनी रखवालीकी,' 'चर्खा चला', 'पाँचक', 'तारे गिनते रहे', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'तिलाजली', 'छलांग मारता चला गया', 'खूनकी होली जो खेली', 'महगू महगा रहा'—ये सब कविताएँ शुद्ध मार्क्सवादी विवेचना कविताके पुटमें हैं। इनमें व्यंग बहुत तीक्ष्ण और कचोट भरा है। इस टेकनीकके सम्बन्धमें मान्य आलोचक आई. ए. रिचर्ड्सने टी. एस. ईलियटकी कविताके बारेमें जो कहा था, वह निश्चय ही कम-अधिक प्रमाणमें निरालाके बारेमें कहा जा सकता है:

"His poetry has 'music of ideas' The ideas are of all kinds, abstract and, concrete, general and particular, and like the musician's phrases, they are arranged, not that they may tell us something, but that their effects in us may combine into a coherent whole of feeling and attitude, and produce a

१. व्यंग्यात्मक। २. उपहासास्पद अतिरंजना (—सं०)

peculiar liberation of the will They are there to be responded to, not to be pondered or worked out" (Principles of Literary criticism P 293)*

प्रगतिशील कविताओंकी ये सब कविताएँ बहुत उत्तम उदाहरण हैं, जहाँ व्यापारिक शोषणका पर्दाफाश किया गया है, जहाँ अर्थशास्त्रके कठिन सिद्धांत 'पोंचक' की दस पंक्तियोंमें 'काम्प्रेस'[1] कर रख दिये गये हैं, जहाँ गतिरोधकी भयानकता 'तारे गिनते रहे' में व्यक्त कर दी गई है; जहाँ मेढक और कुत्तेकी प्रतीकात्मक सहायता लेकर किसानोंकी असहायता और विषमता पर निर्मम घनाघात है; जहाँ विशुद्ध नैचुरलिज्म[2] है; जैसे 'डिप्टी साहब आये' या 'महगू महगा रहा' में—जो कि समाजवादी यथार्थवादसे गर्भित हैं; या कि शुद्ध भावनात्मक चीजें है जैसे आर एस. पंडितकी प्रेतयात्रा और प्रेतदाह पर 'तिलांजली' और 'खूनकी होलीजो खेली' में विद्यार्थियोंकी आइ. एन. ए. के संबंधमे गोलियाँ खानेपर भावोन्मेष ! इन सब कविताओमे निरालाने मार्बिड[3] मृत्यु प्रेम नहीं दरसाया है, जो अक्सर राष्ट्रीय ध्वंसवादी कवि दिखाते हैं। उनकी स्वस्थ, परूष, कलाकार आत्मा सर्वत्र दहाड़ती है, 'हुइ-हुइ' कर विलाप नहीं करती।

हॉ, मे निरालाकी 'तेलकी पकौड़ी' आदि व्यंग-पूर्ण कविताओंकी बात कहने जा रहा था। पहिली बात तो यह कि सूक्ष्म और स्वस्थ परिहास-वृत्तिका आधुनिक हिंदी कवितामें—विशेषत छायावाद-स्कूलमें लोप सा हो गया। 'प्रसाद'का पूरा काव्य उठा लीजिए एक पंक्ति हास्यकी नहीं मिलेगी। 'पंत'के भी वही हाल हैं, यद्यपि 'ग्राम्या' मे ग्रामवधू आदि एकाध कविताओमें थोडा बहुत हास्य है। महादेवी वर्मा की एक पंक्ति भी हास्यमय नहीं। गोया जीवनमे हँसी जैसी कोई चीज है ही नहीं, सब ओर, सब कहीं, सब वक्त नीर भरी दुखकी बदली ही छाई हुई है। 'तार सप्तक' हमारी अपनी चीज है। इसलिए अधिक नहीं कहूँगा—शायद एक भी कविता 'तार सप्तक'मे नहीं, जिसकी रचनाओंमे सामाजिक व्यंगकी मात्रा मौजूद न हो। कुछ कवियोने (भारतभूषण—अहिंसा, रामविलास—सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, प्रभाकर माचवे—कविता क्या है? अज्ञेय—जयतु हे कंटक चिरतन) तो परिहासको भी मॉजा है। परिहास स्वस्थ मन की देन है; अश्लीलता विकृत मनकी; चिर-गंभीरता 'न्यूरौटिक'[4] और चिर-उदासी निश्चित 'मार्बिडिटी'[5] की।

निरालाकी हास्यवाली कविताओंमें कितना सुन्दर व्यंग है; 'रानी और कानी' और 'खजोहेरा' पढकर साहित्यके शुष्ठ शिष्ट पाठक शायद मुँह बिचका लें। मगर दोनोमें

---

* अंगरेजी उद्धरण का हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है

"उनकी कवितामें हमें मिलता है 'विचारोंका संगीत'। उसके अन्तर्गत सभी प्रकारके विचार आते हैं — निगूढ अनपेक्ष और स्थूल; समूहवाची तथा विशेष, व्यक्तिवादी : स्वरकारकी शब्द-योजनाके ही समान उनका जो क्रम बँधता है, वह इस प्रकार नहीं बधता कि उसके द्वारा कोई बात जानी जाय, बल्कि इस प्रकार कि उनके नाना प्रभाव हमारी चेतनामें भावना और दृष्टिकोणकी स्निग्ध सम्पूर्णताके साथ नियोजित हो सकें, और उनके द्वारा सकल्प शक्तिको विशेष उन्मुक्ति प्राप्त हो सके। वे इसलिये हैं कि हम अपने मनपर उनका प्रभाव ग्रहण करें; इसलिये नहीं कि उनपर अध्ययनात्मक चिन्तन किया जाय या कि हम फैलाकर उनका विश्लेषण करें।" [साहित्यिक समालोचनाके सिद्धान्त, पृष्ठ २–३]

१. सक्षिप्त २. प्रकृतिवाद, अथवा यथार्थवादकी सहज स्वाभाविकता ३. रुग्ण ४ स्नायविक व्याधि ५ रुग्णता (—स०)

यथार्थवादको निभाया गया है। कविता अब केवल ऊर्वशीके अनिन्द्य यौवन और 'पंत'की अप्सराके इथीरियल गातकी ही चर्चा नहीं करेगी; सामान्य जन और उनके सामान्य सुख दुख भी कविताके विषय हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि निरालाके व्यंगोंके अदर हमदर्दीकी भी एक छुपी हुई पुट बनी रहती है। अर्थात जहाँ समाजकी स्नाबरी (अहमन्यता व्यर्थ अहंता) पर वे चोट करते है, वहाँ वे जरा भी नहीं चूकते; वार बराबर निशानेसे और सफाईसे करते हैं। 'मास्को डायलाग्ज' इसका अत्यंत उत्तम नमूना है।

'खुश खबरी' और 'दगा की' मे निरालाकी आत्मा सिनेमाई संगीत और नृत्यकी व्यभिचरित कलाके प्रति विद्रोह कर उठी है। कहते हैं–' सत्य सिनेमाकी नटीसे नाचा!' 'दगा की' और भी अधिक सुन्दर रचना है, जिसमें वे आजकलके विकृत अभारतीय संगीत पर कहते हैं :—

मगर खेजड़ी न गई।
मृदङ्ग तबला हुआ,
वीणा सुर-बहार हुई।
आज पियानोके गोत सुनते है।

'गर्म-पकौड़ी' और 'प्रेम सगीत' में वर्ण-व्यवस्था और सस्ते प्रेमके गानोंपर करारा व्यंग है। ब्राह्मणको इसीलिए जानवूझकर उन्होंने 'वम्हन' लिखा है। 'गर्म पकौड़ी' मे आहार और मैथुनकी समान ऐंद्रेयिक प्रतिक्रियाओका वर्णन देकर 'दिल लेकर फिर कपड़ेसा फींचा' या 'कंजूसकी कौडी' की बड़ी बढ़िया यथार्थवादी उपमाएँ हैं। सेक्सका जो टैबू[1] छायावादियोंने बना रखा था, उसका दुर्ग इस पकौड़ी-कचौडी वाली कवितामे ढह गया है।

'कैलाशमे शरत्' मे भी सूक्ष्म परिहास है जहाँ कि अनमेल चीजोंको मिलाकर एक विचित्र भास उत्पन्न किया है। विवेकानन्दको लेकर बाबरसे मिलने चले, राहमें तातारी वीर मिले, किश्तियोंसे मानसर पार किया और वहाँ स्वर्गकी अप्सरा स्नान करनेके लिए उतरी–यह फ्यूचरिस्ट[2] ढंगकी कविता है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि गाँवके किसान और जमीदार वाली रचनाओमें देहाती मुहावरोका बहुत ओजपूर्ण, प्रसादमय उपयोग निरालाने किया है।

तात्पर्य, निरालाके नये दो काव्य-ग्रंथ टालनेकी वस्तुएँ नहीं। नये कवियोंको उन्हें पढ़कर बहुत कुछ सीखने और मनन करनेका मसाला मिलेगा। हम चाहते हैं कि निराला उत्तरोत्तर अपने ही ढंगसे गाँववाली तर्जमे और व्यंग चित्रात्मक चीजे लिखें। वे बहुत सप्राण रचनाएँ हैं। उनका युग-मूल्य है। उनमे परिपक्व कला-प्रतिभाके दर्शन होते हैं। निराला हिंदीका एक अकेला कवि है जो अपने क्रैफ्ट (कवि कर्म) के प्रति अत्यंत सचेतन रूपसे प्रमाणिक रहा है और साथ ही जिसने युगके बदलते हुए मूल्योंको भी सहेजा है—किताबोंकी मारफत नहीं, मगर जीवनके कड़ुए अनुभवसे। उसकी स्याहीकी बूँद, उसके अपने खून और पसीनेकी है; वह निरे खारे, बेअसर आँसुओंकी फीकी फीकी रौशनाई नहीं।

---

१. सामाजिक रूपसे निषिद्ध अभिव्यक्ति की सांकेतिक व्यंजना। २. 'भविष्यवादी', उसे स्वप्नवादी भी कह सकते हैं। २०वीं शताब्दीके आरम्भमें योरपमें, विशेषकर फ्रांसमें; कलाकारोंका एक दल था, जो अपने आपको भविष्यवादी कहता था। (—सं०)